UNIVERSAL LIBRARY

OU_178840

UNIVERSAL LIBRARY

OUP—552—7-7-66—10,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83 K16Jan   Accession No. H2778

Author

Title पंजाब

This book should be returned on or before the date last marked below.

कुशवाहा कान्त

प्रकाशक
जयन्त कुशवाहा,
चिनगारी प्रकाशन, वाराणसी ।

द्वितीय संस्करण
तीन रुपया

●

मुद्रक
चिनगारी प्रेस, वाराणसी ।

'तुरन' को

कुशवाहा कान्त

गत फरवरी के प्रथम सप्ताह में संवाद पढ़ने को मिला कि एक अमरीकी उपन्यासकार और सुलेखक तथा उसकी परम सुन्दरी पत्नी की हत्या किसी ने रातोरात कर डाली। हत्या के पूर्व उन्हें निर्दयता से पीटा गया, फिर छुरे घुसेड़े गये और फिर गोली मारी गयी थी ! जरा हिंसा का श्रृङ्गार, 'फिनिश' तो देखिये। 'वीभत्स' का कैसा विस्तार। चित्रकार जैसे रंग-रंग से चित्र रचे, गवैया जैसे ढंग-ढंग से तान-पलटे लेकर संगीत सँवारे, कवि जैसे अक्षर, छन्द, ध्वनि और रस से काव्य करे वैसी ही शान्ति और व्यवस्था और मनोयोग से हत्यारा हत्या भी करे। समाचार पढ़ने के बाद मेरे मन में आया कि उस अमरीकी कलाकार की मृतात्मा से कहीं भेंट होती तो उससे पूछता कि जीवन में अधिक मजा था या मृत्यु में ? यश में अधिक आनन्द था या हण्टरों से निर्दय पिटे जाने में ? स्वार्थ और छुरे में से छाती की छलनी अधिक उन्माद

से कौन करता है ? खूबसूरत औरत और पिस्तौल की गोली में कितना फर्क है ! उस अभागिनी सुन्दरी से भी मैं जरूर पूछता कि रूप और मृत्यु में (ओ भार्या रूपवती शत्रु !) कोई भेद है भी ?

कुशवाहा 'कान्त'

हिन्दी कथा-साहित्य से अगर आपका जरा भी सम्बन्ध है तो आपने कुशवाहा 'कान्त' का नाम जरूर सुना होगा। यह दूसरी बात है कि आपने उक्त नाम अप्रसन्नता से सुना हो या प्रसन्नता से। 'उग्र' गुरुडम में नहीं विश्वास करते बला से—यह लोग कुशवाहा 'कान्त' को 'उग्र-स्कूल' का कलाकार मानते थे। हिन्दी में फिलहाल मेरी नजरों में कमोवेश 'उग्र-स्कूल' का ही बोलबाला है यद्यपि 'उग्र' बीसियों बरसों से नहीं के बराबर लिखते हैं। पर स्वयं मैं उसे अपने स्कूल के महज एक शाखा का विद्यार्थी मानता था। उस शाखा का नाम रख लीजिये 'यौन सनसनी'। वर्तमान विश्व का बौद्धिक बाजार दूसरे महायुद्ध के बाद—इसी सनसनी से सनक रहा है। मगर पहले मुझे कुशवाहा 'कान्त' की खबर लेने दीजिये।

कला और कलदार

मेरी बातों का आप विश्वास करें तो मैंने अपनी रचनाओं में समाज को 'ज्यों का त्यों' दर्शाने के फेर में 'यौन-सनसनी' को सजाया था कलदार कमाने के लिये नहीं; पर दुर्भाग्य से 'यौन-सनसनी'—चित्रण में अपना सा मुँह देखकर—बाजार के खरीदार चकाचक रस लेते हैं। रचनाओं की बिक्री तब ही होती है ! पैसों की तो बरसात हो जाती है। एक बार मैंने ही कितने रुपये कमाये थे और कितने कम वक्त में ! श्री ऋषभ चरण जैन का उत्थान-पर्व भी आपको भूला न होगा। वैसे ही 'कुशवाहाकान्त' ने खूब ही रुपये कमाये। कहने वाले तो सैकड़ों हजार की कहानियाँ सुनाते

हैं। मुझे इतना मालूम है कि एक दिन, एकटाइप के पाठक, काशी से कन्या कुमारी तक कुशवाहा 'कान्त' को हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार मानते थे ! जब हिन्दी के बिगड़े साहित्यक और कलाकार उसको असफल-अश्लील कह रहे थे, तब वह बनारस में अपना बड़ा-सा प्रेस खोलकर चौथाई दर्जन मासिक पत्र और सैकड़ों पुस्तकें प्रकाशित कर, कलाकारों को हैरांन और रोजगारियों को परेशान कर रहा था।

हत्या

मनचले, रंगीले लेखक 'उग्र' की साहित्यिक-हत्या कर डाली गयी, इसे 'उग्र न भी मानें तो दुनिया मानती है ! श्री ऋषभ चरण के दुःखद दर्शन सामने हैं। और कुशवाहा 'कान्त' की तो सचमुच हत्या ही की गयी थी। आने वाली होली के दिन उसकी तीसरी या चौथी मरण-तिथि पड़ेगी। वह 'सफल-बाजारू' किस बुरी तरह से मारा गया था, किस बुरी तरह मरा कि स्मरण मात्र से मेरे तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं। उस वर्ष की होली के आठ-दस दिन पूर्व, रात के वक्त कुशवाहा 'कान्त' के साथ आधे भडैत की तरह रिक्शे मे बैठकर किसी ने उस पर अनेक घातक आक्रमण किये। स्वर में छुरा, सीने मे छुरा, पेट में छुरा। फिर जख्म-सोजन के बाद अस्पताल में डेढ़ हफ्ते तक पीडा और प्यास से तड़पना—फिर ऐन होली के दिन मरण !

अरे ओ जाने वाले,
रुख से आँचल को हटा देना,
तुझे अपनी जवानी की कसम।

औरत

आर्टिस्ट को धन जितना नहीं मारता, यश जितना नहीं, नशा भी, उसे बहुत आसानी से मारती है औरत। इसलिये खूबसूरत स्त्री के कारण

प्राण खोने वाले कलाकार की चर्चा में कुशवाहा 'कान्त' की याद आ गयी। मालूम नहीं उसके मुकदमे में क्या प्रकाशित हुआ, क्या नहीं पर जब उसकी हत्या हुई मैं कलकत्ते मे था—तब यही अफवाह जोरों पर थी कि उसके प्राणों की ग्राहिका भी कोई औरत थी। धन, यश, नशा, औरत प्रतिभाशाली को वैसे ही सुलभ जैसे भूत साधनेवाले को भौतिक सुख। पर आपने सुना होगा, भूतसाधक प्रेत से प्राप्त चीजों का स्वयं उपयोग करते हुए मारे भय के काँपते हैं। प्रेत की कमाई खाने वाला प्रेत ही से मारा भी जाता है। फिर प्रतिभा बाजार में या विश्वविद्यालयों में तो बिकती-मिलती नहीं। वह तो ईश्वर की कृपा से मुफ्त मिलती है और बाइबिल में लिखा है कि "अनायास मिली वस्तु का वितरण अमूल्य ही होना चाहिये!" किसी रंग का प्रतिभाशाली जब अपनी प्रतिभा से बाजारू लाभ उठाने लगता है तब नष्ट भी होने लग जाता है। प्रतिभा से नाजायज फायदा उठाना ही नहीं चाहिये। प्रतिभा की चाँदी बनाने वाले डाक्टरों का वंश नहीं चलता, साधुओं का स्वर्ग नष्ट हो जाता है और कलाकार प्रतिभाहत ही नहीं पागल तक हो जाते हैं। 'फ्लोबा'—फ्रांस के महान् लेखक ने जीवन से ऊब कर आत्महत्या को खूब माना था। यही गति श्रेष्ठ फ्रांसीसी कलाकार मोमासाँ की हुई थी। अद्भुत इंगलिश लेखक आस्कर वाइल्ड ने घोर अपमानक जेल-जीवन भी भोगा सो तो दरकिनार, फ्रांस में जब वह मरा तो उसकी काया सड़कर गल तक गयी थी। आस्कर वाइल्ड का शव कन्धे पर उठाकर कब्रगाह ले जाने वाले चन्द-चार नजदीकी यार मात्र थे। और वर्षा हो रही थी धुआँधार, दुर्दिन, चारो तरफ अन्धकार....अन्धकार।

ताव और भाव

वह मेरे ही बीहड़ मिर्जापुर जिले का अल्हड़ लेखक था—वही कुश-

वाहा 'कान्त'। वह अभी नौजवान ही था। गधापचीसी से महज चन्द जूते आगे। भलेमानसों की राय में वह बुरा लेखक था इसलिए नहीं कि वह 'यौन सनसनी' लिखता था, बल्कि इसलिये कि वह बाजार में सफल था। कुशवाहा 'कान्त' के आगे-पीछे 'यौन-सनसनी' लेखक अनेक पर उन पर नामधारी भले आदमियों की नजर नहीं। वह सबकी आँखों का काँटा था। उसके मारे जाने से बहुतों को खुशी भी हुई हो तो कोई ताज्जुब नहीं! उसे अगर आदर देकर बढ़ावा दिया गया होता तो संभव है, वह 'यौन-सनसनी' से हटकर और भी उत्तम साहित्यिक-मार्ग ग्रहण करता पर हमारे यहाँ ऐसी चाल नहीं।

कुशवाहा 'कान्त' ने क्या बुरा किया था? किसकी गाय मारी थी उसने? वह उत्तेजक साहित्य लिखता था—यही न। हिन्दी में कितने पाठक हैं। सारे भारत की बतलाइए। पहले यही बतलाइये कि सारे भारत में पढ़े-लिखे लोग ही कितने हैं? ५ प्रतिशत! उनमें हिन्दी कितने जानते हैं? उनमें खरीदकर कितने पढ़ने वाले हैं? मैं दावे से कहता हूँ, आज का सत्ताधारी स्वदेशी राजनीतिक अपने दुष्कर्मों से सारे भारत की जनता का जितना नुकसान कर रहा है, हिन्दी का कोई साहित्यिक उसका पासंग भी नहीं कर सकता, फिर भी कुशवाहा कान्त को बुरा कहने वाले भलेमानस ऐसे अनैतिक अधिकारियों से घृणा कर नहीं सकते। उलटे पापियों, जन-लूटकों, भ्रष्टाचारियों को महिमान्-महान्, श्रीमान् क्या-क्या न कहते है। फोटो छापते हैं, जीवनी छापते हैं, अभिनन्दन-ग्रंथ और मानपत्र समर्पित करते हैं।

मैं कहता हूँ आज के अनेक मिनिस्टर या डिप्लामेट यदि मरने के पहले ही मार (भावुकता की बहक मे कहीं पाठकगण गोडसे-पंथ के अनुगामी न बन जायें) न डाले गये तो मरते ही युग के स्मृति-पट से

यूँ मिट जायेंगे जैसे जानवर विशेष के सर से सींग गायब—कोई उनका नाम-लेवा न रह जायगा। पर कुशवाहा कान्त के पाठक उसके मर जाने भी कम होने वाले नहीं। भले ही आप उसे किसी दर्जे का लेखक कहें पर और उन्हें किसी दर्जे का पाठक।

फागुन के दिन चार

उस दिन रंग नहीं था तो कुशवाहा 'कान्त' उपन्यासकार के कफन पर बाकी सारी विलासी काशी रंग-रंगीली लाल हरी-नीली-पीली थी। उन्माद नहीं था तो उस मैखार की काया में बाकी सारा शहर उन्मत्त था, अस्सी से वरुणा तक। करुणा केवल कुशवाहा कान्त की अर्थी के निकट बाकी चारों ओर उल्लास, हास, विलास, रास, शहर में इतना जीवन था कि उस मुर्दे की सुधि जिगरी दोस्तों को भी न आई हो तो आश्चर्य क्या! होली के रंगीन विशेषांकों में उसके लिये अखबार वाले ब्लैक बार्डर लगाते भी तो क्योंकर! सो जब उसकी उम्र वाले तरुण अपने प्रिय और प्रियतमों को गले से लगा रहे थे तब कुशवाहा 'कान्त' को चिता पर सुला कर जलाया जा रहा था।

लो!

बाजार जीतते वक्त और जीत लेने के बाद भी अनेक बार पत्र लिख और पुस्तकें भेज कर उसने मुझे गुरु माना पर मेरा मुँह सहज सीधा होने वाला कहाँ? कभी मैंने न तो उसके पत्रों का उत्तर दिया और न आशीर्वाद ही। मिर्जापुर का वह भी, मैं भी। मैं 'मतवाला' निकालता था, वह 'चिनगारी', पर हमने न तो कभी एक दूसरे को देखा न बातें कीं। इतनी बातें आज मैं लिख रहा हूँ उसके मर जाने के तीन या चार साल बाद!

—पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'

स्वर्ग में हलचल !

चन्द्रशेखर आजाद तड़प उठे—'जेल में जाकर आराम खोजने वाले, आजादी को भीख के रूप में पाने के इच्छुक भिखमंगे, तुम्हारे भारत के शासक हैं—जो कुछ हो रहा है, उसे मैं बहुत पहले से जानता-समझता आ रहा हूँ...'

जंजीर की हलकी-सी खनक के साथ ही—"सो गए क्या ?" काँप रहा स्वर, रात की कालिमा में रँगी हवा पर तिरता हुआ आसपास फैले सन्नाटे की मनहूसियत पर थिरक उठा। बेजान वातावरण में जान की लहर दौड़ गई मगर क्षण भर के लिए; फिर वही सन्नाटा, मुर्दनी का आलम। छड़दार दरवाजे पर कम्बल में सिमटी, अँधेरे में डूबी छाया ने अपने दोनों हाथ टेक दिये। सामने पसरे पड़े अन्धेरे को भेद उसकी आँखें कुछ टटोलने का उपक्रम करने लगीं। मिनटों यही क्रम रहा, मौन के गहरे सागर में उभ-चुभ करता हुआ। फिर—

"नीरद बाबू !" इस बार स्वर में किंचित बेकली थी दरवाजे के जंगले से उसने अपना मस्तक भी लगा दिया।

"हाँ !" अन्धेरे में हौले से हरकत हुई और बेड़ियों की झनकार उगलती हुई एक मनुष्याकृति दरवाजे के पास आ रही।

"लगता है, रात काफी बीत गई भीखम और बीते भी क्यों न ! बीतना ही चाहिए..." स्वर में कम्पन तो था पर गम्भीरता के परिमाण से काफी हलका।

"भीखम, जेल के इन बन्धनों का रस मेरे लिए नया नहीं तुम जानते हो न ! पर देश की परतंत्रता में घुट रहा वह जेल-जीवन...हटाओ भी, बेकार की बातें...मगर हाँ भीखम, क्या भारत सचमुच आजाद हो गया है ?" वह सहसा चुप हो गया। भीखम को लगा कि बहुत कुछ कहना चाहकर भी वह कुछ नहीं कह पा रहा है, जैसे आकाश से गिराये गये

चुम को अधर ही में किसी ने लोक लिया हो। दरवाजे पर टिके भीखम के हाथों को उसने घप्प से अपने पंजों में जकड़ लिया—"बोलो न भीखम ?"

भीखम सिहर उठा, आँखों में करुणा की तरल ज्वाला झक-से जल उठी—"हाँ, नीरद बाबू..."

"सच !"

"लोगों का यही कहना है..."

"लोगों का कहना है, तुम्हारा नहीं ?" वह हँस पड़ा, हँसता रहा—"खूब !" तुरन्त ही होठों की हँसी विक्षोभ में पग उठी। अरुचि का धक्का खाकर मुखमुद्रा अजीब तरह से सिकुड़-सिमट कर रह गई। भीखम को महसूस हुआ, उसकी आँखों की ज्योति दाहक हो उठी हो और उस दाहकता से आसपास की सारी दुनिया राख में बदलती जा रही हो।

"नीरद बाबू, आज तुम्हें हो क्या गया है ?" बड़ी मुश्किल से निकल पाया उसके मुँह से !

उसने अब भीखम की ओर पीठ कर ली थी—"तो भी भीखम, भारत आजाद हो गया है..." उसने जैसे सामने फैले अन्धेरे से कहा।

"नहीं नीरद बाबू !" भीखम के पैर लड़खड़ाए, स्वर लड़खड़ाए और लड़खड़ा उठी शब्द की एक-एक शिकन।

"नहीं ! पागल हो गए हो तुम...तुम्हारे जेल पर तिरंगा लहरा रहा है...लालकिला...दिल्ली....भारत...भारत की हवा तक तिरंगी हो उठी है....सब कुछ...फिर भी भीखम, तुम्हें मालूम नहीं होता ?....भारत एकदम आजाद हो गया है....एकदम..." भीखम ने फटी-फटी आँखों से देखा, वह पागलों की तरह हवा में उंगलियाँ नचाने लगा था, एकबारगी उसकी ओर घूमा और—"मुझे पागल तो नहीं समझने लगे हो तुम ?...जानता हूँ, मुझे फाँसी होनेवाली है और फाँसी के पहले बहुतेरे पागल हो जाया करते हैं। यही सोच रहे हो न ? पर भीखम, मैं पागल नहीं होने का...तुम नहीं जानते क्या कि फाँसियों को

हमने बच्चों के खिलवाड़ से अधिक कुछ नहीं समझा और अब भी तुम्हारे सामने वही नीरद खड़ा है भीखम....बिल्कुल वही...'' और वह दरवाजे के पास ही चहलकदमी करने लगा।

''नीरद बाबू।'' भीखम घबरा-सा उठा।

वह रुक गया, कुछ देर उसको एकटक निहारता रहा और तब जैसे कुछ याद आ जाने से चिहुँक-सा पड़ा—''हाँ, तुम्हें मालूम है कि मुझे फाँसी किसलिये दी जा रही है ? बोलो न, कहते क्यों नहीं कि खून के लिये, मैंने खून किया था और इसलिये कानून को मेरे खून की आवश्यकता महसूस हुई और फिर मैं ठहरा एक पुराना खूनी...पहले भारत की आजादी के लिए अंग्रेजों का खून करता था और अब जब आजादी मिल गई तो आजादी के रक्षकों को रिवाल्वर के निशाने का साध्य बनाने लगा ! आजादी के रक्षक...''

और भीखम ने दाँत पीसने की ध्वनि धड़कते हृदय से सुनी।

तभी—

दर्जनों जोड़ी बूटों की चर्र-मर्र आवाज आई। भीखम चौंक पड़ा। सामने दूर तक फैले वार्डों से कई लालटेनों की रोशनी क्रमशः पास होती जा रही थी। उसने जल्दी से अपने आपको दरवाजे से अलग कर लिया और—''नीरद बाबू, जेलर साहब गश्त में आ रहे हैं....'' कह कर वह वार्डों की ओर बढ़ गया। उसके सधे हुए कदम शीघ्र ही 'लेफ्ट-राइट अबाउटटर्न' वाली मुद्रा में गतिशील हो उठे। जेलर साहब के सामने आते ही उसने मुस्तैदी से सैल्यूट ठोंका और अदब के साथ एक ओर खड़ा हो गया।

''इधर सब ठीक है ?''

''जी !''

जेलर साहब ने सतर्कतापूर्वक इधर-उधर दृष्टि दौड़ाई नीरद की कोठरी के सामने आकर दृष्टि अपने आप थम गई।

"इसका क्या हाल है ?" कहते-कहते वे और आगे बढ़ गये।

भीखम भी साथ ही छलक कर उनके पास हो रहा—"चल रहा है..." कह कर उसने अन्दर निहारा, नीरद अपने कम्बल पर खड़ा था।

"खाना लिया न ?"

"जी..."

जेलर साहब ने झुक कर ताला वगैरह टटोला और आगे बढ़ गये।

भीखम ने एक लम्बी साँस ली। बूटों की चरमर ध्वनि आगे बढ़ती ही गई। अचानक—"बहुत भयानक आदमी है यह...जाने कितनी जानें...मगर चार दिनों का मेहमान...ग्यारह तारीख..." उसके कानों से जेलर साहब की क्रमशः अस्पष्ट-सी होती आवाज टकराई। सन्न रह गया—"तो आखिर...आज सात है...ग्यारह....चार दिन..." उसके मुँह से अस्फुट ध्वनि निकल गई, अपने आप ही। लगातार कई निश्वासों का झटका और आँखों से टपक कर पैरों पर आ रहे पाँच सात गरम मोती के दाने...हृदय मे उठ पड़ी पीड़ा की लहर और सामने पड़े स्टूल पर धप्प से बैठ जाने का कुछ भी अहसास नही हो पाया उसे।

उस भयंकर सरदी में भी मस्तक पसीने से भींग उठा, सारे शरीर मे चिनगियों का छिटकना भी उसे महसूस हुआ। सहमी-सी, उड़ी-सी निगाह सामने नीरद की कोठरी की ओर मुड़ी, मन के आलोड़न मे और भी तीव्रता आ गई, चलकर नीरद से सब कुछ बतला दे ?....नहीं ! हृदय ने अपने आप से ही कहा, अपने आप ही को बरजा—बेकार है, नीरद जैसे बलिदानी व्यक्ति के लिए फाँसी और सजाओं का महत्व ही क्या ?—'कुछ नहीं, कुछ नहीं !' मुंह से निकल गया उसके। जल्दी से निगाहें नीरद की कोठरी से फिरा लीं। मन का आलोड़न बढ़ता ही गया। मानस-पटल सिनेमा के परदे की भाँति सजीव हो उठा, कितनी हाहाकरी थी वह चित्रमय-सजीवता ! बैठे रहना कठिन हो गया तो उठकर

टहलने लगा। हवा की बर्फीली काया दहकते अंगारे की छाया प्रतीत हो रही थी फिर भी उसने टहलना बन्द नहीं किया, टहलता ही रहा।

उफ !

बीस साल...भारत की दासता, रिवाल्वरों की धाँय-धाँय और बमों के धडाके से गूंजित हो उठी थी। कर्मवीर गाँधी के आन्दोलनों तथा गिरफ्तारियों से कम प्रभावशाली; पर बारूद के धुएँ और फाँसी के तख्ते के अनुगामी मुट्ठी भर युवकों का वह स्वप्न कोटि-कोटि हृदयों में कहीं अधिक घर कर जाने वाला था। वह तब भी लगभग इसी तरह जेल का पहरेदार था। जवान धमनियों का लहू रह-रह कर उबल उठता, अपने आपको नौकरशाही सत्ता की 'नमकहलाली' में लगा हुआ पाकर....पर लगा ही रहा, जवानी की तनी कमर बूढ़ी होकर झुक गई मगर नमक-हलाली से पीछा नहीं छुड़ा पाया। जाने कौन-सी कमजोरी थी उसमें कि...और वह अब भी बनी हुई है....इसके लिए जाने कितनी बार अपने को धिक्कार चुका है...पर कुछ नहीं हुआ। धिक्कार को ही अन्त में मुँह की खानी पड़ी। अपनी पहरेदारी में महात्मा गाँधी को भी रखने का मौका मिला और गोरी सत्ता के यमदूत उन पागल युवकों को भी, मगर महात्माजी से कम प्रभावशाली होते हुए भी उन पागलों का 'पागलपन' कहीं अधिक मन में धँसा जाता था...

पैर बुरी तरह लड़खड़ाए पर सँभल गए।

मानस-पटल चित्रों के उहापोह में डूबा रहा।

एक बार—

काकोरी षडयंत्रकारियों के कुछ जवानों के साथ कहीं से बदल कर यह नीरद भी आया। मुश्किल से तेईस का रहा होगा। पंजाब में भगत सिंह-आजाद वगैरह के सहयोगी और कलकत्ते में गोरे मेजर को दिन-दहाड़े उसके दो साथियों सहित बम से उड़ा देने वाले इस बंगाली युवक के व्यक्तित्व में जाने कैसा आकर्षण था कि अनायास ही उसकी ओर

उन्मुख हो उठा और अपनी श्रद्धा के बल पर नीरद का थोड़ा-बहुत स्नेह भी पा गया...उसे पन्द्रह साल कठोर कारावास का दंड हुआ था। मेजर-हत्याकांड सरे बाजार और दिन दहाड़े हुआ था लेकिन सरकार कुछ प्रमाण नहीं पा सकी थी...सरकारी वकील फाँसी दिलवाने के लिए सर पटक कर रह गये मगर कुछ हो नहीं पाया। सरकार की ओर से सुकुमार नीरद को 'भयानक' करार दिया गया था इसलिए उसको हमेशा हथकड़ी-बेड़ी से युक्त रखा जाता था। काकोरी के कैदी शीघ्र ही अन्यत्र हटा दिए गये। अकेला नीरद ही रह गया था कि सहसा...

मस्तक घूम उठा भीखम का। खम्भे से सर टिका कर खड़ा हो गया पर मस्तिष्क चित्रमय ही बना रहा।

सहसा एक दिन उसने सुना, नीरद के साथियों ने उसे जेल से भगा दिया। उस समय छुट्टी पर था, सुनकर हृदय उमग उठा था...दिन बीतते गये, बीतते गये। उसके सामने के कितने ही 'रंगरूट' ऊँचे-ऊँचे ओहदे पर चढ़ गये। मगर वह जहाँ का तहाँ बना आया। ऊँचा उठता क्योंकर ! जब आन्तरिक रूप से एकदम नीचे गिरा हुआ था। यह उसका भाग्य है कि अब तक जमादारी की नाव, डूबी नहीं वर्ना...

भारत आजाद हुआ।

कल के सुराजी, शासक बन बैठे।

यूनियन जैक का स्थान तिरंगे ने लिया पर गोरों ने स्थान छोड़ कर भी नहीं छोड़ा। सुराज के लिए जेल काटने वाला जब शासन के गुल-गुले गद्दे पर विराजा तो सब कुछ भूल गया, अपने आपको भी। अँग्रेजों द्वारा छोड़ी गई रंग की पिचकारी कभी व्यर्थ नहीं जाती शायद...तभी तो अँग्रेजी रंग के छींटों से खादी की बलिदानी-स्वच्छता, शासक के रूप में उनसे भी दस-बीस हाथ आगे बढ़ गई....

समय के चक्र में वह सब कुछ भूल चुका था—'जैसी बहे बयार' में ढाल लिया था अपने आपको और अभी आजादी मिले पूरे दो साल भी

नहीं हुए थे कि अचानक जेल में एक दिन कैदी के रूप में, नीरद ने आकर उसे झकझोर दिया...मन पर बिजली का हण्टर शपाक से लगा—अरे, तो क्या अँग्रेज पुनः आ गए और इन पागलों का पागलपन फिर... आँखों पर से विश्वास उठ गया—क्या यह वही नीरद है ! पर आँखों में उगे हुए विश्वास को जमना ही पड़ा—नीरद,वही नीरद कुमार था और उसे जेल में भी इसीलिए घसीट लाया गया था कि उसने एक 'सत्ता-धारी' के कलेजे को गोलियों से छलनी कर दिया था । हे ईश्वर । अपनी आँखें मींच ली थीं, परन्तु वास्तविकता का रंग इतना कच्चा थोड़े ही हुआ करता है कि आँख मींच लेने से छूट जाय । घंटों मानसिक-आन्दोलन में घिरा परेशान रहा । उलझन से छूटने का जितना ही प्रयत्न करता, उतना ही और उलझता जाता । नीरद को बन्द कर दिया गया । ठीक उसी साव-धानी से जैसे बीस साल पूर्व...उससे सामना करने की हिम्मत चाह कर भी नहीं ला पा रहा था अपने आप में । बार-बार अपनी झुक गई कमर—झुर्री पड़ी पेशियों, सफेद हो गए बालों का स्पर्श करता—और तब सोचने लगता—कितना तो बदल गया है, क्या जाने, पहचानेगा भी या नहीं ! वह दिन सारा का सारा तर्क में ही घुल गया ! हिम्मत की खोज में, नमक-सत्तू बाँध कर पड़ा रहा पर न मिली, न मिली ।

शाम को नहीं रहा गया तो—

"साहेब !" जेलर साहब के सामने पहुँच गया—"आज वाला कैदी कहाँ का हैं क्या किया था इसने ?" पूछ बैठा ।

"ओह ! यह बंगाली ?" जेलर साहब ने चौंकते हुए कहा ।

"जी, यह बंगाली है !" उसकी धडकनें कलेजे की ठठरियों पर भयानक रूप से आघात करने लगीं ।

"हाँ जी, पुराना कातिल है बदमाश !" उनकी भवें अजीब तरह से कमर तोड़ने लगीं—"अभी कुछ दिन हुए आजादी की खुशी में काला-

पानी से मुक्त हुआ है और यहाँ आकर अपने एक दोस्त, विधान-सभा के मेम्बर को ही गोली मार दी...''

और कुछ सुन सकने की ताब नहीं रही उसमें। जल्दी से हट गया वहाँ से। आते-आते ठहाके में सनो पर आशंकित चेतावनी का आधा ही हिस्सा सुन पाया—''देखो, खूब सावधानी रखना...किसी तरह की गड़बड़ी न होंने पावे।''

विधान-सभा के जिन मेम्बर का नाम साहब से सुना था, उनको और नीरद ने गोली मारी ?—शायद ही कोई विश्वास कर पाए। उसको स्वयं विश्वास नहीं हो रहा था। कांग्रेस के इतने बड़े नेता...प्रसिद्ध देश-सेवक को और देश पर मर मिटने वाले एक विप्लवी की गोली का निशाना बनना पड़ा—अजीब-सी पहेली थी कि उसका सारा जीवन-क्रम अस्त व्यस्त होकर रह गया।

थोड़े ही प्रयत्न के बाद नीरद ने उसे पहचान लिया।

घटना के सम्बन्ध में उससे इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं मालूम हो सकता कि जो कुछ हुआ, उसमें धोखा एकदम नहीं—बस।

''भीखम सिंह !'' अचानक जेलर साहब की ललकार सुन कर वह बुरी तरह चौंका। जाने कब खम्भे से अड़ कर बैठ गया था, बैठ कर शायद सो भी गया था, जेलर साहब के वापस लौटने का रंचिक भी आभास नहीं हो पाया। झटपट सम्हल कर खड़ा हो गया।

''सोने आये हो यहाँ !''

''जी....''.

''चुप रहो, इतने दिन हो गए मगर तुम्हें अपनी जिम्मेदारी समझ सकने की तमीज नहीं आई—यह ठीक नहीं, समझे !'' और वे आगे बढ़ गये, पैर पटकते हुए। बेचारा चुपचाप खड़ा रह गया कर्तव्यविमूढ़-सा।

* *

कम्बल पर जाने कब आ कर पड रहा, कुछ पता नहीं।

बहुत देर तक खटमलों और मच्छरों से संवर्ष करता रहा, जिसका वह अपने लम्बे जेल-जीवन में आदी हो चुका है। अन्धेरे में खटमलों को किस तरह 'पीसना' चाहिए, मच्छरों पर किस तरह 'झपट्टा' मारना चाहिये इसकी ट्रेनिंग भी जेल की विशेषताओं में से गिनी जाती है। नीरद ने अपने इस 'संघर्ष' से किसी तरह की परेशानी का अनुभव नहीं किया। उसे अन्धेरा सदा से प्रिय रहा है। मगर आज जाने कैसी बेचैनी मन में भर गई है कि...

''उफ!'' घबराकर उसने लेटे ही लेटे दोनों हाथों से मस्तक दबोच लिया। आज छठाँ या सातवाँ माह चल रहा है मगर यह सब कभी नहीं हुआ पर आज...रह-रह कर उसकी आँखों के समक्ष वही दृश्य झूल उठता, जिसको वह कभी याद नहीं करना चाहता था, कभी नहीं। उसके रिवाल्वर ने जाने कितनों की जानें ली होंगी, पैरों ने जाने कितने मुर्दों को अपना रास्ता बना कर कचरा होगा पर...

जेल के घंटे ने दो की चोट मारी।

थका-सा, परेशान-सा उसने निश्चय कर लिया, अब सो ही जाना चाहिए। शायद सोने से वह सब कुछ भूल जाय, जिसकी याद तन-मन में पीड़ा भर देती है, पत्थर के फर्श से सर टकरा कर चूर कर देने जैसी कायरता, मूर्खतापूर्ण इच्छा होने लगती है। एक बार मन-मस्तिष्क-शरीर को झटकार, उसने करवट बदल ली। शीघ्र ही शरीर और मन निद्रा देवी की गोद में जा पड़े; मगर मस्तिष्क सोना चाह कर भी नहीं सो सका इसलिए कि सपने के रूप-जाल में फँस गया था।

स्वप्न के रूप का जाल फैलता गया और उस फैलाव में मस्तिष्क बँधता गया, बँधता गया।

फाँसी !

जज ने फाँसी की सजा सुना दी और उसे फाँसी हो गई, अपनी ओर से सब कुछ स्वीकार जो कर लिया था उसने। शरीर की मिट्टी का दाह-संस्कार आत्मा ने देखा और ठहाका मारकर हँस पड़ी। आत्मा उड़ती रही...उड़े भी क्यों न, उसमें उन्मुक्तता के पंख जो लग गए थे। एकाएक झटका लगा, आत्मा अब स्वर्ग के बीच घूम रही थी...स्वर्ग !

अचानक सामने एक महल सरीखे भवन पर निगाह पड़ी, तो डटी रह गई।

ऊपर अशोकचक्र-मंडित तिरंगा बड़ी शान से लहरा रहा था।

कि सहसा—

"अरे, नीरद तू !"

आत्मा ने चौंक कर देखा—महल के बरामदे से झाँकता हुआ एक रोबीला युवक, हर्ष-विह्वल-सा उसे बुला रहा है। ध्यान से देखा—ओह, भगत सिंह!...आँखें फट-सी पड़ीं उसकी—आजाद, बिस्मिल, अशफ़ाक़, रोशन, राजगुरु, सुखदेव आदि अपने पुराने साथियों को पाकर! सभी ने उसको बारी-बारी गले लगाया।

सभी भयानक रूप में उत्सुक दीख रहे थे, अपने भारत के सम्बन्ध में जानने के लिए कि कैसे क्या हुआ, क्या हो रहा है !

"हमारे भारत की आजादी कैसी लगती है नीरद !" पं० बिस्मिल आखिर अपने को रोक नहीं सके।

"चुप रहो पंडित !" आजाद ने तड़पते हुए कहा—"भारत की आजादी अभी दूर है, बहुत दूर...जहाँ नीरद जैसे देशभक्तों को अब भी अपने रिवाल्वर का उपयोग करने की आवश्यकता महसूस होती हो शासक के लिए, उस भारत की आजादी की कहानी सुनना मैं पाप समझता हूँ। पूछ कर देखो इससे, भारत का क्या रंग है, इसे फाँसी

क्यों हुई ! मैं खूब समझता हूँ। जेल मे जाकर आराम खोजने वाले, आजादी को भीख के रूप में पाने के इच्छुक भिखमंगे, तुम्हारे भारत के शासक हैं और जो कुछ हो रहा है, वह बहुत पहले से जानता-समझता आ रहा हूँ....सुनो, समझो कि क्या भारत वस्तुतः आजाद है, क्या वह आजादी का मतलब समझ रहा है, क्या उसमें आजादी का उपभोग करने की क्षमता है...मैं चला...और तुम भगत, रहोगे ?'' कहते हुए वे आवेश में उठ पड़े, गोलियों से छलनी हुआ शरीर लपटें उगल रहा था।

सभी सन्न।

आत्मा बेचारी सिहर उठी, उस नरपुंगव की शहादत की आग मे तपी वाणी के ओज से।

''तुम रहो भगत और सुन लो'' कहकर उन्होंने नीरद के कन्धे पर हाथ रक्खा—''मुझ से मिलना। और हाँ पंडित, इसे हो सके तो बापू की सभा में पेश कर देना ताकि वे भी देख लें अपने भारत का रूप.... आजाद भारत....हुँः !'' और वे झपटते हुए चले गए।

उनके जाते ही—

''फाँसी !''

''तुम्हें फाँसी हुई है नीरद !''

''कैसे ?''

''क्यों ?''

अब तक का बोझिल-सा वातावरण बृहदाकार प्रश्न-चिह्न के रूप में कोलाहलमय हो उठा।

नीरद के साथ ही और सभी आश्चर्यचकित थे कि आखिर आजाद को बिना बताए यह सब कैसे मालूम हो गया।

''नीरद !'' पंडित बिस्मिल का बड़ा ही गम्भीर स्वर था।

नीरद ने कुछ कहने के लिए मुँह खोला ही था कि किसी ने आकर कहा—"आप लोगों को बापू ने याद किया है, अभी !" और वह चला गया ! सभी औत्सुक्य में गोते लगा रहे थे। पंडितजी उठ पड़े—"चलो नीरद, अब बापू के सामने ही तुम सब कुछ कहना और वहीं हम लोग सुनेंगे भी।"

* *

भारतीय स्वराज्य-भवन।

बापू की सभा।

महारानी लक्ष्मी बाई से लेकर गोखले, तिलक, लाजपतराय, अली-बन्धु, सुभाष आदि सभी उपस्थित—यथाक्रम, यथास्थान !

एक चटाई पर तकिये के सहारे बापू बैठे थे, उनके ठीक पीछे महादेव भाई बैठे कोई किताब पढ़ने में लीन थे।

क्रांतिकारियों की मंडली ने झुक कर सबका अभिवादन किया।

"क्या बात है भाई पंडित, चन्द्रशेखर इतना आगबबूला क्यों हो उठा है। अभी-अभी आया था, जाने कितनी उलटी-सीधी सुना गया पगला कहीं का। आज भारत से कोई आया है क्या ?" बापू ने स्नेह-विगलित स्वर में मुस्कराते हुए पूछा।

"हाँ बापू !" पण्डित जी ने धीमें से कहा और नीरद को आगे कर दिया।

"तुम...क्या बात है बेटा ?" बापू की वाणी स्नेहार्द्र थी—"भारत कैसा है ?...नेहरू...और हाँ, क्या तुम्हें फाँसी की सजा हुई है...क्यों ?...अब भी तुम..."

"बापू !"

"हिंसा का सहारा अब भी तुम्हें आवश्यक लगता है बेटा ?"

"हाँ, बापू !"

सुभाषबाबू बापू के पास ही बैठे थे। धीरे से उन्होंने अपने फौजी टोप को उतारकर हाथ में ले लिया और—"बापू, आपके साकार हुए सपने की नींव हिल रही है, हिलती रहेगी—इसलिए कि उसमें लहू का पर्याप्त सिंचन नहीं हुआ है और जो कुछ हुआ भी है वह निरीह पशु जैसा...जब कि आजादी बलिदान तो चाहती है, लहू तो चाहती है पर निरीह पशु जैसी नहीं...."

बापू तिलमिला-से उठे। आँखें ढँप गईं, तिलमिलाहट के आवेग से।

सुभाषबाबू को एक झटका लगा और उन्हें बीच ही में रुक जाना पड़ा।

सभा का वातावरण अजीब तरह से कसमसा उठा।

"उफ् !" बापू पीड़ित हो उठे।

"तुम चुप भी रहो मोहन !" अपनी श्वेत मूँछों के बीच से तिलक ने बापू को मीठी-सी फटकार सुनाई—"तुम कहो बेटा !"

चारो ओर सनसनी मच गई।

स्वर्ग में स्थापित भारतीय स्वराज्य भवन में हलचल मच गई थी। सभी अपने देश के संबंध में जानने के लिए आकुल सभा की ओर दौड़ पड़े।

"एक निवेदन !" नीरद ने किंचित संकोच से कहा—"भारत के साथ ही मैं अपनी भी कहानी सुनाता हूँ अगर आप लोगों को कोई एतराज नहीं हो तो। क्यों कि वैसे शायद कोई रस न मिल पाये भारत के स्वरूप की झाँकी में..."

"ठीक है, ठीक है।" चारो ओर से आवाजें आने लगीं।

बापू सम्हल कर बैठ गए।

उनके मस्तक पर चिन्ता की लकीरें स्पष्ट उभर आई थीं।

अगल-बगल-पीछे अपने समवयस्क साथियों का दल और सामने

गुरुजनों के जमघट के बीच बैठा नीरद कहने लगा। सैकड़ों जोड़े कान उत्सुकता में डूबे सजग हो गए...

उस दिन सारे स्वर्ग में हलचल मच गई थी!

भारत तब आजाद नहीं था।

दासता की जंजीर...

स्मृतियाँ : जो लहू में डूबी थीं...

बंगाल का क्रान्ति-दल हुंकार कर उठा। झुँझलाई हुई हुंकार देखते ही देखते सारे भारत में गूँज गई....ज़र्रा-ज़र्रा सिहरन से नहा उठा...

जंजीर बड़े जोर से बज उठी। आधी से अधिक रात, चारों ओर फिर रहा सन्नाटा और सन्नाटे की भयानकता में चार चाँद-सी लगती जनवरी की जवान सर्दी—छाया घबरा-सी उठी; कलेजा बुरी तरह धड़क रहा है, कुर्सी से उठकर अनुभव किया ही था कि जंजीर पुनः बज उठी। इस बार बजानेवाली बाँहों में पहले से अधिक आकुलता आ गई लगती थी। काँपते पग उठे, सम्हले और तब उसने अपने आपको नीचे, दरवाजे के पास खड़ा पाया। बाहर, सड़क पर तीन-चार कुत्ते एक साथ ही भूँक उठे और फिर भी जंजीर की खनक...सामने खड़े लकड़ी के दो पल्लों के उस पार से किसी के हाँफने का अहसास किया उसने और—"कौन !" बड़े प्रयत्न से कंठ के बाहर निकला अपना स्वर, वह स्वयं नहीं सुन पाई; मगर उससे दो-ढाई फुट के फासले पर खड़ी आकृति के कानों ने बड़ी आतुरता से सुना—"दरवाजा खोलो छाया...मैं हूँ !"

"आप..." उसके हाथों ने झपट कर दरवाजा खोल दिया; बाहर खड़ी आकृति के अन्दर आने और पुनः दरवाजे के बन्द होने में आधे मिनट से अधिक नहीं लग पाया—"आप...आप..." अपने विस्फारित नेत्रों के किसी कोने में सन्तोष का सागर, उल्लास की उफनती हुई सरिता सम्हाले वह एकटक निहारती रही। सेकेन्ड का गला तराशता समय, मिनट पर हाथ साफ करने लगा; परन्तु वह निहारती ही रही। कंठ की रुद्धता से पराजित स्वर आँखों की पुतलियों पर तैरने लगा था।

"छाया !" आकृति ने अपना लहू से भीगा बाँया हाथ दायें के सहारे कर लिया था—"मैं जेल से छूटा नहीं, भाग आया हूँ...

उफ् !....मुझे....गोली लगी है छाया...जल्दी ऊपर चलो...उफ् !"
स्वर में पीड़ा का आभास न आ पाए, शक्ति ने जी तोड प्रयत्न किया पर फिर भी आह के दो क़तरे छलक ही पड़े।

छाया की विमूढ़ता एक झटके के साथ टूटी—"ओह....यह....यह ख़ून..."

आकृति घूम पड़ी और जल्दी-जल्दी सीढ़ियाँ पार करने लगी।

छाया की निष्प्राण-सी हो रही चेतना बिजली की-सी तेज़ी से सम्हली और तब एकबार में तीन-तीन सीढ़ियाँ पार करने लगी। सीढ़ियों पर लहू के गीले-गीले धब्बे बिखरे पड़े थे, जो उसे अंगारों से कम दाहक नहीं प्रतीत हो रहे थे।

"छाया !" बेतरह हाँफता हुआ वह इजीचेयर पर पड़ गया था।

"आपने यह क्या कर लिया !" उसके पैरों से लिपटकर रो पड़ी छाया।

"तुम रो रही हो छाया !"

"प्राण..."

"पगली...मेरे लहू को मातृभूमि का स्पर्श पाने का मौका मिला, यह गर्व की बात है न कि रोने की..." कहकर उसने अपने पैरों से छाया को अलग किया और इजीचेयर से उठता हुआ बोला—"जाओ, अगर हो सके तो गरम, नहीं तो ठंढा ही पानी...गोली लगे काफी देर हो रही है...लगता है अन्दर ही...मुझे जल्दी से जल्दी अभी तुमसे विदा होना है...अरे, तुम फिर रो पड़ी...छाया, तुम्हारा रोना..."

छाया की फूटती हुई रुलाई गले के अन्दर ही रह गई।

आँचल के छोर ने आँसुओं के 'सावन' को देखते ही देखते अपने आप में समेट लिया।

क्षण भर कमीज उतारने के प्रयत्न में लगे उसके हाथों की ओर देखती रही फिर लपकती हुई कमरे के बाहर चली गई। उसके जाते ही

एक ठंढी साँस के साथ उसने दरवाजे की ओर निहारा और दाँत पर दाँत रखकर बायें हाथ में फँसी कमीज को खींच लिया। कलाई के थोड़ा ऊपर माँस में रिवाल्वर की गोली का छोटा-सा जख्म दीख पड़ा—"लगता है, अन्दर ही रह गई...छोटा-सा जख्म और इतना खून..." मन ही मन कह उठा वह।

हवा के ठंढे स्पर्श से जख्म अजीब तरह से करक उठा।

पीड़ा की लहर उठी मगर दब-पिसकर रह गई।

मस्तक घूमने लगा, पैरों ने लड़खड़ाकर शरीर का बोझ सम्हालने से साफ-साफ इनकार कर दिया मगर जीवट ने साथ नहीं छोड़ा। धीरे से जख्म को उँगली से टटोला...मन्द-सा हो गया रक्त-स्राव तेज हो गया, बूँदें धार मे परिणत हो उठी और धार से फर्श रंगीन हो उठा.... उसका सारा शरीर पसीने से भर गया।

तभी—

छाया के हाथ से पानी की केतली झम्म से गिरी, चीख पड़ी वह—"उफ्! इतना खून..."

"बस, इतने ही से घबरा गईं?"

"हायरी....डाक्टर....मैं अभी..." बदहवास-सी वह दरवाजे की ओर मुड़ गई मगर उसने लपककर छाया के काँप रहे शरीर को अपनी ओर खींच लिया—"पागल तो नहीं हो गई हो तुम! मैं जेल से भागा हूँ...पुलिस की गोली...अपने को सम्हालो छाया...जानती हो, पुलिस की सारी शक्ति हमें पकड़ने के लिए सन्नद्ध हो चुकी होगी...इस वक्त किसी का यह जानना कि मैं यहाँ हूँ, मुझे तो पुलिस के खूनी शिकंजे मे डाल ही देगा; साथ ही तुम्हें भी...और..."

"पर..."

"पर-वर नहीं, तुम जल्दी से पानी ले आओ, बस!"

छाया की आँखों के समक्ष अन्धेरा छा गया।

कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि आखिर यह सब क्या हो गया ? कैसे हो गया ?

पति खून में डूबा हुआ सामने खड़ा हो और पत्नी...

जाने कैसे रुका हृदय का बाँध टूट गया और वह दोनों हथेलियों से मुँह ढँककर रो पड़ी।

उसने परेशान आँखों से अपनी ओर, छाया की ओर निहारा।

इसी समय बाहर का दरवाजा खड़क उठा। ज़ख्म की पीड़ा जानें किस ओर खिसक गई और उसके समक्ष पुलिस की लाल पगड़ी विद्युत-सी चमक उठी, हृदय का स्पन्दन नखों में समाता-सा जान पड़ा मगर क्षण ही भर के लिए; तुरन्त ही उसकी मुद्रा दृढ़ हो गई—"छाया !"

छाया ने आँसुओं से भींगा चेहरा उठाया।

"कोई दरवाजा खटखटा रहा है...संभव है, पुलिस हो..."

"पुलिस !" छाया को जैसे किसी ने एवरेस्ट की चोटी से हवा में उछाल दिया।

दरवाजा फिर खड़का।

"चलो छाया !"

"..." छाया की आँखों का तरल-शून्य, आशंका और भय से फट पड़ा, बड़ा-सा प्रश्न-चिह्न लिए उसकी दृष्टि उस हरिणी-सी कातर हो उठी, जिसके छौने को, जंगल का राजा एक ही उछाल में दबोचने ही वाला हो।

"चल कर दरवाजा खोल दो छाया..." वह उद्वेलित हो उठा था।

"दरवाजा खोल दूँ !"

"हाँ, बहुत कुछ संभव है, कोई अपना ही आदमी हो...और अगर पुलिस ही होगी तो दरवाजा नहीं खोलने से कैसे काम चलेगा ? फिर मैं उस स्थिति के लिए भी तैयार हूँ..." कहते हुए उसने फुलपैंट की जेब से रिवाल्वर निकाल लिया—"चलो !"

रिवाल्वर देख कर छाया की साँस रुकने लगी। बडी मुश्किल से काँपते पैरों को सम्हाल नीचे की ओर बढ़ी। गाँधी जी के 'आदर्शों' से अचल-अडिग, उसका पति खून और रिवाल्वर से खेलने लगा है, विश्वास नहीं हो पा रहा था...दरवाजे के पास आते-आते उसकी चेतना लुप्त-सी होने लगी, अगर पीछे-पीछे आ रहे उसने अपने दाएँ हाथ से उसे सम्हाल न लिया होता तो निश्चय ही उसका शरीर फर्श से टकरा गया होता।

दरवाजा पुनः खड़का।

"कौन !" स्वर यथासंभव महीन बनाकर पूछना ही पडा उसे।

"राम भाई, आप...मैं हूँ...जल्दी दरवाजा..." कहने वाले ने उसे पहचान लिया था, स्वर से घबराहट झाँक रही थी। दरवाजा खुला, कोई आँधी-सा अन्दर घुसा और फिर पडाक से दरवाजा बन्द भी कर दिया।

छाया बेहोश हो गई थी। राम ने उसे धीरे से सम्हाल कर फर्श पर लिटा दिया था।

"कोई नई बात !"

"आपको जल्दी से जल्दी यहाँ से चला जाना है..."

"पर...." राम ने बेहोश पडी छाया की ओर बड़ी व्याकुलता से निहारा—"छाया की हालत..."

"मैं सब कुछ सम्हाल लूँगा..." उसने बीच ही में उसे रोक दिया—"आपके पीछे नौकरशाही कुत्ते लग चुके हैं...कोई आश्चर्य नहीं कि कुछ ही देर में आप सशस्त्र पुलिस के दस्तों से घिर जाय... दादा को लगी खबर कच्ची नहीं होती...जाइए भी...वे आपका इन्तजार मुट्ठीगंज वाली गली में कर रहे हैं..." वह इस तरह ऐसे कहे जा रहा था, जैसे रिकार्ड में सारी बातें भर दी गई हों। उसकी उद्विग्नता बतला रही थी कि एक क्षण का विलम्ब भी नहीं है। राम कभी बेहोश पडी छाया की ओर देखता, कभी लहू उगल रहे अपने हाथ को निहारता...

"राम भाई !"

"नीरद...."

"कुछ नहीं, अब आप..." कहते हुए उसने राम को दरवाजे की ओर ढकेला—"मोह-माया के लिए क्रान्ति में स्थान नहीं—उफ् ! आप तो...जाइए भी...रास्ते में आप अपने को अकेला नहीं पाएँगे...दल के कई साथी..." और उसने लगभग जबरदस्ती राम को दरवाजे के बाहर ठेल कर दरवाजा बन्द कर लिया।

एक लम्बी साँस के साथ उसने मस्तक पर चुहचुहा आए स्वेद-कणों को हथेली से मसल दिया और तब निगाहें स्थिति को टटोलने के लिए झुकीं। छाया अब तक बेहोश पड़ी थी।

धीरे से उसके पास बैठ गया नीरद।

अचानक की बेहोशी से उसके कपड़े अस्त-व्यस्त-से हो गए थे।

नीरद को सहसा रोमांच हो आया।

अपने बाईस साल के जीवन में किसी नारी का इतने निकट से, एकान्तता के बीच देखने का मौका नहीं मिल पाया था उसे मन में जाने कैसा उद्वेलन, जाने कैसी झिझक आ समाई थी कि कुछ समझ नहीं पा रहा था। ऐसी समझ न पाने वाली समस्या, उसके समक्ष सर्वथा नवीन रूप में आई थी...इससे पहले यह भी नहीं कि नारी का नैकट्य मिला ही न हो—संघ की नारी सदस्याओं के साथ, रात-रात भर वीरान खंडहरों की खाक छानता फिरा है पर ऐसी तो कोई बात...उसकी आँखें बेहोश छाया से हटकर दरवाजे पर अड़ गई थीं...एक झटके के साथ उसने आँखें फिराईं। छाया का घुटने तक का पैर नग्न हो गया था...आँचल जमीन पर बिखरा पड़ा था...रोमांच की एक लहर ने पलकों की पुतलियों से चिपका दिया—"उफ् ! दादा...मुझे क्या हो गया दादा..." दोनों हाथ से भाग रहे मस्तक को दाब कर उठ पड़ा वह—"नहीं-नहीं यह सब महज पागलपन है...नारी, मातृ-गरिमा से प्रोद्भासित श्रद्धा-पुंज है...

हाँ, श्रद्धा-पुंज...नारी क्रांति है, रणचंडी है और क्रांति उसकी श्रद्धा-मयी माँ बन चुकी है...श्रद्धा-पुंज...क्रांति...रणचंडी....बस...और कुछ नहीं..." मस्तिष्क में उठ पड़े झंझावात में वह खो-सा गया और खो कर जब उसने अपने आपको पुनः पाया तो अन्तर का द्वंद्व, क्रांति की प्रज्वलन्त-भावना में डूबकर अपना अस्तित्व गँवा चुका था।

विद्युतगति से वह घूमा। हिरन के कुलाँचों जैसी क्षिप्रता से उसके हाथों ने छाया के अस्त-व्यस्त हो रहे कपड़ों को सम्हाला और वहीं फर्श पर व्यस्त था उसकी नाड़ी-परीक्षा में दत्त-चित्त हो गया।

कुछ ही देर में—

छाया तनिक सुगबुगाई।

नीरद नाड़ी छोड़ कर उसके मस्तक पर हाथ फिराने लगा।

"प्राण!"

"..." कुछ बोल नहीं पाया वह, उसी तरह मस्तक सहलाता रहा।

छाया होश में आ रही थी।

उसके हाथों में हौले से कम्पन हुआ और उसने मस्तक पर फिर रहे हाथों की कलाई पकड़ ली।

आँखें धीरे से खुलीं, बन्द हुईं फिर खुलीं और—"आप!"

"जी...आपकी तबियत..." नीरद पहले तो किंचित घबराया मगर फिर तुरन्त ही सम्हल गया—"मुझे आप शायद नहीं पहचानतीं...मैं क्रांति-दल का एक सदस्य हूँ. नीरद...राम भाई को न चाहते हुए यहाँ से हटा देना पड़ा इसलिए कि उनके पीछे पुलिस लग गई थी..."

"पुलिस...क्रान्ति...नीरद..." उसके शरीर को झटका लगा और उठकर बैठ गई।

"जी!"

"पर वे..."

"ओह, शायद आपको मालूम नहीं राम भाई दल के सदस्य बन चुके हैं...."

छाया का माथा तेजी से चक्कर खा रहा था।

कुछ भी सोचने-समझने की शक्ति से अपने मस्तिष्क को शून्य पा रही थी। भौंचक-सी होकर कुछ देर तक नीरद की ओर निहारती रही। उसके मौन से नीरद को पुनः परेशान हो उठना पड़ा।

"आप चिन्ता न करें, राम भाई अब निरापद हैं..."

"निरापद हैं..." उसके होंठों में कम्पन की लहर दौड़ गई।

नीरद को हवा जैसी साँय-साँय के सिवा और कुछ समझ न पड़ा।

"चलिए, आपको कमरे में पहुँचा दूँ..."

उसे सहारा देकर उठाने के लिए उसने हाथ बढ़ाया, परन्तु छाया सहसा झिझक कर उठ खड़ी हुई, पैर डगमगाये मगर तत्क्षण ही सम्हल गए। वह एक अपरिचित युवक के सामने, अकेले घर में खड़ी है—तुरन्त ही उसके मन में झिझक बन कर उतर गया। परिस्थिति की असाधारणता नारीत्व के संकोच और लज्जालु-प्रकृति में घुल गई। जल्दी-जल्दी अपने कपड़ों की बेतरतीबी सुधार, थोड़ा पीछे हट कर खड़ी हो गई। जाने कितनी देर तक वह उस हालत में बेहोश पड़ी रही—सोच कर ग्लानि में डूबी जा रही थी।

"दरवाजा खोलो!" बाहर से कोई चिग्घाड़ उठा।

नीरद के कान खड़े हो गए।

घबरा कर छाया के मुँह से चीख निकलने ही जा रही थी कि नीरद ने झपट कर उसके मुँह को हथेली से बन्द कर दिया—"पुलिस आ गई...भगवान के लिए आप कुछ न बोलें...जैसा मैं कहूँ, वैसा ही करती चलें..." धीमे से फुसफुसा उठा।

छाया विमूढ़-सी खड़ी रह गई।

उसकी ओर से निश्चिन्त होते ही नीरद बिजली बन गया। उसकी

तेज निगाहों से सीढ़ियों तथा फर्श पर फैले खून के धब्बे छिपे न रह सके जल्दी-जल्दी उसने कुछ सोचा और लपक कर बगल के लैट्रिन-रूम में घुस गया। कोट की जेब से रिवाल्वर निकाल कर लैट्रिन रूम के गड्ढे में फेंका और झपट कर दरवाजे की संधि में, बाँएँ हाथ की तीन उँगलियाँ रख, जोर लगा कर दरवाजा खींच लिया।

छाया मूक देखती रही।

दरवाजे की संधि में पिस कर नीरद की उँगलियाँ भुर्ता बन गईं, पर उसके चेहरे पर पीड़ा की एक शिकन भी नहीं पड़ने पाई, बल्कि संतोष की साँस के साथ उसने खून उगलती उँगलियों को बड़ी निर्ममता से मसल दिया—उस भयंकर सर्दी में भी छाया उसका जीवट देखकर, पसीने-पसीने हो उठी। दरवाजा बराबर पीटा जा रहा था। अपने मुँह से निकल पड़ने वाली चीखों को छाया बड़ी मुश्किल से रोक पा रही थी। नीरद की बिजली जैसी पटुता ने यह सब एक ही दो मिनट में कर लिया।

"नहीं खुलता तो तोड़ दो दरवाजा..." बाहर से कोई दहाड़ उठा

नीरद ठमका।

छाया चिहुँकी।

नीरद ने छाया को अपने पीछे आने का इशारा करके तीन ही चार छलांग में सीढ़ियों को पार कर लिया और वहीं से कुछ तेज आवाज में बोला—"भाभी, देखो तो कौन बुला रहा है..." छाया को सीढ़ी के बीच ही से कुछ समझा कर उसने वापस कर दिया। मशीन की तरह डगमग पैरों को सम्हाले छाया दरवाजा के पास आई और स्वर को यथा संभव स्वाभाविक बना कर पूछा—"कौन है भाई?"

"पुलिस...दरवाजा खोलो..." कोई गरजा।

छाया ने धीरे से दरवाजा खोल दिया।

"बाप रे बाप!"

उसके प्राण सिहर उठे।

सामने रिवाल्वर सीधी किये इन्स्पेक्टर खड़ा था उसकी भीत निगाहों ने बतलाया, सारा मकान पुलिस के घेरे में आ चुका है। अगल-बगल के घरों की खिड़कियों से अनगिनत शंकित आँखों को अपनी ओर केन्द्रित भी अनुभव किया उसने। उसके इस तरह हक्की-बक्की रह जाने से इन्स्पेक्टर को कम आश्चर्य नहीं हुआ। मुद्रा की सन्नद्धता एवं रुक्षता मद्धिम-सी पड़ने लगी।

"आप...आप..."

"क्षमा कीजिएगा, हमें पता लगा है कि...मतलब कि आपके मकान की तलाशी..."

"तलाशी ?"

"जी !"

"मगर..."

"क्षमा करेंगी...." कहते हुए उसने गौर से छाया के सारे शरीर का निरीक्षण कर डाला—"मजबूरी है..." और बिना उसके उत्तर की अपेक्षा किए वह आठ-दस सशस्त्र कांस्टेबलों के साथ अन्दर घुस पड़ा।

"घर में और कोई है क्या ?"

"जी, हमारे देवर...."

"आपके देवर...तो क्या राम बाबू आपके..."

"जी नहीं, वे तो मेरे पति हैं...."

इन्सपेक्टर तो जैसे आसमान से गिरा।

छाया जाने कैसे कहती जा रही थी। उसकी मुद्रा पर घबराहट तो थी पर आश्चर्य में डूबी हुई-सी। उसकी भंगिमाओं से इंसपेक्टर के सारे उत्साह पर पानी फिरता जा रहा था कि सहसा सीढ़ियों पर पड़े खून के धब्बों पर उसकी निगाह पड़ी। चौंक कर दो-तीन कदम पीछे हो रहा। पीछे-पीछे आ रही छाया की धड़कनें तेज़ हो उठीं। कांस्टेबलों के बीच सनसनी दौड़ गई थी।

"यह तो शायद खून का धब्बा है..." इन्स्पेक्टर की आँखें चमक उठीं।

"जी हाँ !" छाया ने कह दिया।

"अच्छा !...आपके देवर साहब..."

"वह ऊपर हैं..."

इन्सपेक्टर की निगाहें अपने चारों ओर बारीकी से जाँच में लगी हुई थीं। अभ्यस्त कान्सटेबल इधर-उधर दौड़ते-भागते तलाशी में लगे हुए थे।

उसी समय, इन्सपेक्टर तथा कांस्टेबलों को चौंकाती, हैरान करती नीरद की आवाज आई।

"कौन है भाभी, बड़ी देर लगा रही हो...मेरी उंगली का खून तो बन्द होने का नाम ही नहीं ले रहा है...जल्दी में आकर पानी गरम...."

तब तक हाथ में रिवाल्वर ताने कान्स्टेबलों के साथ इन्सपेक्टर ऊपर उसके ठीक पीछे पहुँच चुका था—"हैंडस अप !" और रिवाल्वर की नली उसकी गर्दन से भिड़ गई।

भौंचक्का-सा नीरद दोनों हाथ ऊपर करके खड़ा हो गया।

जख्मी उँगलियाँ अब तक लहू उगल रही थीं।

कई मिनट बीत गए।

दोनों ओर से गहरा मौन रहा।

इन्सपेक्टर के बिना कुछ कहे ही कान्सटेबलों ने नीरद के कपड़ों की तलाशी लेना शुरू कर दी।

पर वहाँ था ही क्या ?

अपना-सा मुँह लेकर सब इन्सपेक्टर साहब की ओर निहारने लगे, आदेश की अपेक्षा के साथ !

"आपका नाम ?"

"मेरा ?"

"जी !"

"जी, मुझे बिहारी कहते हैं !" नीरद का स्वर काँप उठा। पुलिस

के सामने काँपने की स्वाभाविक मुद्रा से वह बहुत पहले ही अपने को मुक्त कर चुका था इसलिए, भीत-सा होने के नाट्य में असुविधा हुई। इन्सपेक्टर को अधिक देर तक पढ़ने का मौका न मिले, उसने तुरन्त अपने को पीछे खड़ी छाया की ओर उन्मुख कर लिया—"यह सब क्या है भाभी, मेरी समझ में नहीं आ रहा है...."

पर वह कुछ बोल नहीं पाई।

घटनाएँ इतनी तेज़ी से घटित हुई थीं कि बेचारी हतबुद्धि-सी हो उठी थी।

"रामबाबू को जानते हैं ?"

"आपका मतलब ?" प्रश्न के उत्तर में प्रश्न ही पाकर इन्सपेक्टर को अपने प्रश्न की निस्सारता का अनुभव हुआ, खिसिया-सा उठा—"मतलब यह कि रामबाबू आपके कौन लगते हैं...और आपकी उँगलियों में यह चोट कैसे लगी ?" कहकर उसने नीरद की चुटीली उँगलियों पर निगाह जमा दी—"आपको यहाँ आए, लगता है अधिक देर नहीं हुई है..."

"वाह !"

"क्या ?..."

"आपको यह कैसे लगा कि मुझे आए अधिक देर नहीं हुई..." इन्सपेक्टर गावदी है, यह समझते देर नहीं लगी और तब उसने अपने को निश्चिन्त-सा बना लिया।

"बकवास नहीं, उत्तर दीजिए !" वह खीझा तो था ही, नीरद की उस अप्रत्याशित निर्भिकता से भन्नाकर तड़प उठा। इशारा पाते ही कान्सटेबल कमरे का चप्पा-चप्पा छानने में लग गए थे।

"रामबाबू मेरे भाई हैं..."

"सगे ?"

"जी नहीं, ममेरे !" नीरद ने अपने को शांत कर लिया था।

"वे कहाँ हैं ?"

"यह आप मुझसे क्यों पूछते हैं? आज लगभग सात-आठ महीनेसे..."

"ठहरिए, आपकी यह चोट?"

नीरद ने अपनी उँगलियाँ उसकी ओर बढ़ा दीं—"आपके आने के कुछ ही देर पहले लैट्रिन रूम के दरवाजे में पड़कर...आपको विश्वास न हो तो चलिए दिखला दूँ..आज सुबह ही यहाँ आया...रास्ते में जो सर्दी लगी कि तबियत...उफ्! इस जाड़े में पेट की खराबी...मगर साहब, आपको..."

इन्सपेक्टर पेचोताब-सा खा उठा।

"रामबाबू जेल से भाग गए हैं!"

"भाग गए हैं!" नीरद बुरी तरह चौंका—"पर वे तो...."

"थे कभी, इस समय वे पूरे क्रान्तिकारी बन चुके हैं...इन साले क्रान्तिकारियों के मारे तो नाक में दम आ गई। हरामजादों का जाल जेल तक फैला रहता है। रामबाबू जैसे सीधे-सादे...."

"आप कह क्या रहे हैं?"

"ठीक है, वे इस समय क्रान्तिकारियों के साथ हैं। पता लगा है, जेल से भागते समय दोनों ओर से जमकर गोली चली है और रामबाबू घायल भी हो उठे हैं...." इन्सपेक्टर कहता-कहता रुक गया सहसा। अपनी मूर्खता पर उसे और भी खीझ हो आई—भला यह सब बातें यहाँ कहने की हैं! सोचा उसने और तलाशी से फारिग हो आए कान्सटेबलों की ओर मुखातिब होता हुआ बोला—"कुछ मिला?"

"नहीं सरकार!"

"आह अच्छा, जरा आप चलकर वह दरवाजा तो दिखलाइए!" फिर भी पुलिस को जन्मजात शंका ने उगल ही दिया।

उसके गावदीपन पर नीरद मन ही मन मुस्करा उठा।

"हैं, आपको लगता है कोई इतराज है?"

"नहीं साहब, चलिए न!"

नीरद के पीछे सब नीचे उतर गए।

छाया जहाँ की तहाँ, पत्थर की मूर्ति बनी खड़ी रह गई।

यह सब क्या हो गया, क्या हो रहा है? कुछ समझ नहीं पा रही थी वह.

नीचे—

"देखिए, यह रहा लैट्रिन रूम का दरवाजा..."

इंसपेक्टर साहब ने दूर ही से देखा—

दरवाजों की संधि में खून और मांस के छिलके लगे हुए थे।

देखकर आश्वासन-सा मिल गया उन्हें।

बिना कुछ कहे कान्सटेबलों सहित उनके बाहर निकलते ही, जल्दी से नमस्कार ठोंक, नीरद ने दरवाजा बन्द करके छुटकारे की एक लम्बी साँस ली।

शीघ्र बाहर से पुलिस के बूटों की चर्र-मर्र की ध्वनि ने उसे बताया—

दरवाजे के बाहर पड़ा 'नौकरशाही-फन्दा' सतर्कतापूर्वक जमा है।

अब तक सोई उँगली की पीड़ा जाग उठी।

ड्योढ़ी की छत से लटकते नन्हें-से बल्ब के धुँधले प्रकाश में उसने जख्मी उँगलियों का ग़ौर से मुआइना किया और जल्दी से बाथरूम में घुस गया...

रात की साँस टूटने-सी लगी थी और आसमानी चादर पर टँके सितारों की दमक मात खाती जा रही थी। अस्ताचल की जंजीरों में जकड़े सूरज ने कसमसा कर अपने को बन्धन-मुक्त करने का प्रयत्न करना आरंभ कर दिया, जंजीरें टूटने लगीं और उन टूटी जंजीरों ने क्षितिज को सिन्दूरी छींट के चादर से ढँक दिया।

● ●

असहयोग आन्दोलन की उनमत्त लहर, दूध की मरी हुई मक्खी बन चुकी थी। बंगाली क्रान्ति दल और कांग्रेस के उच्च नेताओं के बीच हुआ 'सहयोग' का समझौता विस्फोटक रूप में भंग हो गया। भारतीय जनता को महात्मा गांधी की सुनहरी-कल्पना 'वर्ष के अन्त तक हमें स्वराज्य प्राप्त हो जाएगा' एकदम निराशाजनक एवं निरर्थक-सी जान पड़ी। कांग्रेसी-नेताओं ने जनता को भुलावे में रखने के लिए 'सरकारी-समझौते' पर पर्दा डालने की भरसक कोशिश की, पर कल्पना के सितार का तार टूट चुका था—तार विहीन सितार से झनकार निकलती भी कैसे! परतन्त्रता में घुट रही कोटि-कोटि आत्माओं के 'भगवान' कांग्रेसी नेता, जेल से मुक्त कर दिए गए, जनता ने टूटे दिल से प्रसन्नता भी प्रकट की परन्तु नैराश्य की जिस चोट से दिल टूटा था, वह राख में ढँके अंगारे की भाँति अन्दर ही अन्दर 'हरी' बनी हुई थी...

बंगाल का क्रान्तिदल हुंकार कर उठा, झुँझलाई हुई हुंकार देखते ही देखते सारे देश में गूँज गई। देश-व्यापी संगठन का आरंभ इस हडकम्पी गति से हुआ कि भारत का जर्रा-जर्रा सिहरन से भर उठा।

"दादा!"

टूटी फूटी सीलभरी अँधेरी कोठरी में बड़ी बेचैनी से टहलता हुआ व्यक्ति चौंककर घूमा—"कौन, नीरद... आओ। मैं तुम्हारी ही राह देख रहा था... रामबाबू की क्या खबर है?... उनके घर में..." कहता हुआ वह एक कोने में पड़े लकड़ी के भद्दे-से स्टूल पर बैठ गया। मुद्रा पर चिन्तन की गहनता थी।

"लगभग सब ठीक!" नीरद उसके सामने बिछे टाट पर बैठ गया—"रामबाबू अब कलकत्ता पहुँच चुके होंगे। और अब तो पुलिस का ध्यान

भी उनके घर की ओर से बँट गया-सा लगता है; मगर दादा, लगता है, मेरा इस तरह से खुले रूप में रामबाबू का ममेरा भाई बनकर रहना ठीक नहीं। किसी भी समय...रामबाबू वैसे तो मुहल्ले में घनिष्ट नहीं हो पाए थे, फिर भी आभास मिलता है कि...."

"शक हो रहा है ?"

"हाँ !"

"फिर ?"

"मैं सोचता हूँ..."

"वहाँ से हट जाओ !" दादा ने उसके आगे के शब्दों को बड़ी ही स्वाभाविकता से लोक लिया और उठकर पुनः टहलने लगे—"सोचूँगा... पर नीरद, हमने जो योजना बनाई है, उसके लिए तुम्हारा रहना भी तो आवश्यक है। यहाँ के लोगों की अजीब हालत है। महीनों हो रहे हैं पर अभी तक कोई सम्पर्क नहीं स्थापित हो सका। सभी अपने आप में मगन हैं। चन्द्रशेखर से मुलाकात करने की कितनी चेष्टा की मगर कुछ हो नहीं पाया...कभी पता चलता है, पंजाब में हैं तो कभी दिल्ली...ऐसे तो काम नहीं चलेगा और हाँ, सुनो, आजकल महात्माजी कहाँ हैं ?... चार-पाँच दिनों से अखबार भी नहीं देख पाया....इस चूहेदानी के बीच तो...." स्वर आवेग, खीझ और परेशानी की त्रिवेणी बना हुआ था। टहलने में और अधिक तेजी आ गई।

नीरद कुछ देर मौन बना रहा। सोचता हुआ-सा !

"नीरद !"

नीरद बिना कुछ बोले उनकी ओर प्रश्नवाचक भाव से निहारने लगा

"तुम्हारी भाभी का पत्र आया है..."

नीरद किंचित चौंका, बहुत उत्सुक हुआ—"कब ?"

"कल..."

"क्या..."

"कुछ नहीं, यों ही..." एक लम्बा-सा निश्वास और—"वहाँ पर पैसों की कमी से बड़ी परेशानी हो उठी है। हमारी अनुपस्थिति दल के संगठन में बड़ी बाधक सिद्ध हो रही है...और तुम जानते हो, नलिनी की शारीरिक अवस्था कितनी...कैसे सब कुछ सम्हाल पाए..." उनकी मुद्रा की दृढ़ता चिन्ता में घुल उठी हो, ऐसा नीरद को महसूस हुआ। परिस्थिति निस्सन्देह विकट थी, नीरद अनभिज्ञ नहीं था।

"दादा!"

"हूँ!"

"हमारा यहाँ आना अच्छा नहीं हुआ क्या?" स्वर से आशंका झाँक रही थी उसके।

दादा ने कुछ कहा नहीं। चुपचाप टहलते रहे। चिन्तन में डूबे परेशानी से घिरे।

सहसा ही वे घूम कर खड़े हो गये—"ऐसा तुम क्यों कहते हो नीरद?" प्रश्न में बड़ा ही वजन था।

नीरद सकपकाया।

"बोलो न!"

"यहाँ आकर हमारी योजनायें कुछ काम की नहीं हो पाईं। ऐसा लग रहा है कि हमारा रामबाबू वाला विश्वास हलका है...यह भी हो सकता है कि मेरा यह भ्रम ही मात्र हो पर आपने तो उनके व्यक्तित्व का बारीकी से अध्ययन कर लिया होगा..." कहकर उसने अपनी आँखें दादा पर गड़ा दीं।

"हाँ!"

"तो?"

"कुछ नहीं, कुछ नहीं...देखा जायगा!" उनके स्वर से प्रस्तुत प्रसंग के प्रति उपेक्षा साफ झलक रही थी—"अभी तो हमें, यहाँ आने के अपने मूल आधार के विषय में ही सोचना है—समझे न?"

मूक नीरद निहारता रहा उनकी ओर। दादा की उद्विग्नता क्या करती है ! यह उससे अजाना नहीं था। असहयोग की निस्सारता का अपमानक, बहुत हद तक कायरता पूर्ण परिणाम सामने आते ही शान्त-सा बना बंगाली क्रांति-दल विस्फोट के रूप में सक्रिय हो उठा। पैसे की कमी महसूस हुई तो देश के अन्य क्षेत्रों में बिखरे पड़े, क्रान्ति दलों से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए दादा को स्वयं बाहर निकलना पड़ा, अपने कुछ चुने हुए अनुगामियों के साथ। नीरद मन-ही-मन सारी घटनाओं का लेखा-जोखा करने लगा।

रामबाबू और दादा का थोड़ा सम्पर्क पहले ही से था। रामबाबू उस समय जेल में थे। दादा ने उनसे सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया और उन्हें सफलता भी मिल गई। इलाहाबाद में उनके साथ आ जाने से काफी सहायता मिलने की उम्मीद थी और जेल में जाकर रामबाबू गांधीवादी विचार-धारा के प्रति निराश-से हो उठे थे सो दादा ने थोड़े बहुत खून-खराबे के एवज़ में उन्हें जेल के सीकचों से मुक्त करना ही उचित समझा और...

"दादा !" दरवाजे पर खड़ी तरुणी ने सहसा कोठरी का मौन भंग किया, एक झटका लगा और दादा के साथ ही नीरद की निगाह भी दरवाजे की ओर मुड़ गई, दादा की आँखों में 'क्या है ?' का भाव दूसरे ही क्षण छलक उठा मगर नीरद यों ही सा बना रहा। तरुणी अन्दर चली आई—"दादा, आजाद साहब आपसे मिलना चाहते हैं, बाहर दालान में..." कह कर उसने तिरछे तिरछे नीरद की ओर निगाह फिराई—"क्या उन्हें बुला लाऊँ ?"

"आजाद !" दादा एकबारगी ही चौंके—"ओह, चन्द्रशेखर.... और कोई भी है उनके साथ कजरी ?"

"नहीं, अकेले हैं..."

नीरद चुपचाप पास ही पड़े 'मार्क्स के सिद्धान्त' में मशगूल हो

गया था, जैसे 'आजाद' के आने से उसको कोई दिलचस्पी ही न हो दादा ने जब कहा कि 'भेज दो!' तब पलटती हुई कजरी की ओर निगाह फिरी और फिर वहीं 'मार्क्स'...

"नीरद!"

"हाँ दादा..."

"आजाद को जानते हो?"

"हाँ!" उसके स्वर में बहुत लापरवाही थी—"आपसे ही तो कई बार यह नाम सुन चुका हूँ...साहसी हैं, यह अखबारों ने बतला दिया है..." कह कर वह बच्चों जैसी अल्हड़ता से उनकी ओर निहारने लगा। दादा मुस्करा पड़े।

पर जब आजाद का लंबा-तड़ंगा-रोबीला व्यक्तित्व उसके सामने आया तो चमत्कृत हुए बिना न रहा।

दादा को उन्होंने झपट कर अपने गले से लगा लिया। एक निपट देहाती की वेश-भूषा में भी उनका विद्रोही-हृदय एवं कठोर-कर्मठता की ज्योति छिप नहीं पा रही थी। दादा के साथ वह भी, उसके पास ही बोरे के टुकड़े पर बैठ गए।

"मुझे दुख है कि आपसे जल्दी भेंट नहीं हो पाई।" आजाद का चेहरा एकदम गंभीर था—"लाहौर से कल ही दिल्ली पहुँचा और आपके भेजे आदमी से भेंट होते ही भागा-भागा चला आ रहा हूँ...जेल वाला कांड, अखबारों के द्वारा मालूम हुआ था...क्या आपने ही.." कहते-कहते वे चुप हो गए और उनकी निगाह नीरद के चेहरे पर पड़ गई नीरद को न चाहकर भी सिहर उठना पड़ा, जल्दी से उसने अपने सामने 'मार्क्स' की ढाल रोप ली।

दादा ने दबे स्वर में स्वीकार कर लिया।

आजाद कुछ देर तक विचार-मग्न बैठे रहे। फिर—"मगर जाने क्यों मुझे यह कुछ अच्छा नहीं लगा—आप जैसे अनुभवी मस्तिष्क मे ऐसी बातें उठी ही क्यों?—मैं समझ नहीं पा रहा हूँ..."

नीरद आश्चर्य में डूब गया। दादा के कार्यों की इतनी खुली-सीधी आलोचना उसने पहली बार सुनी थी, किसी दूसरे के द्वारा।

"ऐसा आप..."

"ऐसा मैं इसलिये सोच रहा हूँ कि..."

"क्या राम बाबू पर आपका विश्वास नहीं ?" दादा बीच ही में पूछ उठे।

"सो बात नहीं !" आजाद का कंठ लगभग गरज में लिपट गया-सा महसूस किया नीरद ने—"बल्कि यह कि इससे शक्ति का अपव्यय एकदम मुफ्त में हुआ और आपका फ़ायदा ही क्या हुआ ?..."

"मैंने सोचा था..."

"ठीक है, मैं भी मानता हूँ कि रामबाबू से आपको काफी सहायता मिल सकती थी पर हुआ क्या ? लेने के देने पड़ गये...अब तो आपको अपने साथ ही उनकी भी रक्षा करने की आवश्यकता आ पड़ी है—है न ?.. मैं समझता हूँ, आपका इलाहाबाद में अधिक टिकना खतरे से खाली नहीं....यह बंगाल नहीं है अमूल्य बाबू !" कहकर उन्होंने दीवार से पीठ टिका ली और अपने दोनों घुटनों को हाथों से बाँध कुछ सोचने लगे।

"मानता हूँ !"

"ठीक है, ठीक है !" और उन्होंने अपने उलझे-बिखरे-रूखे बालों में उँगलियाँ फँसा दी।

"दादा !" सहसा नीरद को जैसे कुछ याद हो आया—"मैं..."

"नहीं, कोई बात नहीं....बैठो..."

"यह ?" आजाद ने उसकी ओर इंगित करके पूछा।

"नीरद कुमार !" दादा ने इतना ही भर कहा। आजाद उसे फिर घूरने लगे थे।

नीरद अब अपने को वहाँ बैठे रहने में असमर्थ पा रहा था। धीरे

से उठकर बाहर चला गया। आते-आते उसने सुना, आजाद ठहाका मार कर हँस पड़े थे। उसे जाने कैसा-कैसा लगने लगा था।

* * * *

"क्यों, क्या हुआ ?" सामने दालान में कजरी चूल्हा सुलगाने में लगी हुई थी, उसको बाहर आता देख पूछ उठी—"कैसे, चले क्यों आये ?" धुयें से उसकी आँखें लाल हो उठी थीं, आँचल को 'वीर-भाव' से कमर में लपेट लिया था उसने। नीरद चुपचाप पास ही पड़े पीढ़े पर बैठ गया।

कजरी उसके पास चली आई।

"बोलते क्यों नहीं ?"

"क्या बोलूँ, तुम्हारा सर !" नीरद खीझ उठा।

"नहीं जी, मेरा सर इतना फालतू थोड़े ही है—अपने ही को बोल-वाओ..." वह हँस पड़ी, नीरद को लगा जैसे चाँदी की नन्हीं-मुन्नी-सुकु-मार घंटियाँ टुनटुना उठी हों मगर फिर भी वह खीझ से अपने को अलग नहीं कर पाया—"ओह, समझी ! जनाब को भूख लगी होगी !"

"नहीं कजरी !"

"ओह, तुम्हें तो मेरा नाम भी मालूम है जी !" कहकर वह और जोर से हँस उठी।

"मजाक करोगी तो..."

"तो उठकर चला जाउँगा, यही न !" और उसने धीरे से नीरद के गाल पर एक चपत रख दिया—"बड़े आए हैं, फिलासफर की पूँछ बन कर..."

"चुप रहो कजरी..."

"गूँगी हूँ क्या ?"

"नहीं कजरी !"

"फिर ?"

४

"पागल हो !"

"तुम्हारा सर...."

इस बार उसने कुछ इस तरह का भाव बनाया चेहरे पर कि नीरद को हँस पड़ने को बाध्य होना पड़ा—"नाराज हो गई, पागल कहीं की... तुझे तो नाहक ही दादा ने अपने साथ रखा है..." कहकर उसने कजरी की चोटी पकड़कर अपनी ओर खींची—"जानती है, आज कौन आया है दादा से मिलने ?..."

"और नहीं तो क्या ?" उसके चेहरे पर स्निग्धता खिल उठी।

"बोल ?"

"कोई आजाद है !"

"बस न ?"

"छोड़ो भी, भाभी की चिट्ठी दादा ने तुम्हें दिखाई"

"हाँ !"

"झूठ !" कह कर उसने कड़वा बादल उगलते चूल्हे की ओर उड़ती-उड़ती निगाह डाली।

"अच्छा, झूठ ही सही। तू बता...."

"देखी थी !"

"क्या लिखा था ?"

"बहुत सारी बातें..." लगा कि जैसे वातावरण में गंभीरता जबरदस्ती घुल गयी हो—"श्रृङ्गार बहुत बीमार है..."

"बीमार है !"

"हाँ और भाभी जल्दी ही..."

"....."

"प्रबोध की पत्नी मर गई...पैसे का कोई इन्तजाम न हो सकने के कारण...उसका बच्चा...तुम जानते तो हो, जब से प्रबोध गिरफ्तार हुआ तब से उसके अपने सम्बन्धियों से कोई संपर्क नहीं रह गया था...पुलिस

की निगाह में पड़ने के डर से कोई उसके पास नहीं जाता था...मरते समय भाभी को एक पत्र लिख गई थी, बच्चे की देख-रेख के लिए; मगर भाभी के पहुँचने के पहले ही पुलिस ने शव-दाह करने के बाद बच्चे को अपने कब्जे में कर लिया था—भाभी की दशा अपनी ही ठीक नहीं, सातवाँ या आठवाँ चल रहा है उनका....दल के बाकी साथी छिन्न-भिन्न हो चले हैं...और....तुम्हें विश्वास होगा नीरद, भाभी ने अपनी ऐसी हालत में ही, पैसे की लाचारी दूर करने के लिए एक मारवाड़ी सेठ की कोठी में घुसकर उसको रिवाल्वर का निशाना बनाया और किसी तरह घायल होते हुए भी बिना कुछ लिए भाग सकने में समर्थ हुईं..."कुछ देर पहले की एकदम कजली की तरह सरस-मधुर-अल्हड़ कजरी के स्वर में आँसुओं का बिलख रहा तारल्य झाँक रहा है, इस पर शायद ही कोई विश्वास कर पाता, मगर नीरद तनिक भी चमत्कृत नहीं हुआ। उसकी मुद्रा क्षण प्रति क्षण गंभीर होती जा रही थी।

"उफ्! और कजरी!"

"फिर भी दादा पर इसका कोई असर नहीं हुआ नीरद..."

"दादा!"

"दादा कितने प्रस्तर-हृदय हैं..."

"प्रस्तर-हृदय!" नीरद का स्वर आवेगकंपित था। कजरी सहम-सी उठी, नीरद पर जाने कैसा नशा चढ़ आया था।

"नीरद!"

"तुमने सोचने में भूल की है कजरी!" उसके स्वर का आवेग पूर्ववत् था—"दादा का हृदय पत्थर नहीं, बल्कि वह अंगारों से निर्मित हुआ है। और तुम्हें मालूम नहीं, अंगारों के ताप में पड़कर पत्थर भी अपना अस्तित्व कायम नहीं रख पाता, उसको भी उसी का हमराही बन उठने को बाध्य होना पड़ता है...तुम कैसे सोच रही हो कि इन सबका प्रभाव दादा के दहकते हृदय पर पड़ेगा और वह अपनी दाहकता खो

देगा...यह कभी संभव नहीं कजरी...कभी नहीं..." अपने आप में डूबा नीरद जैसे कजरी से नहीं अपने आपसे ही कह उठा, उसकी आँखों में लाल-लाल डोरे झिलमिलाने लगे थे—क्या जाने आन्तरिक उत्ताप से या बाह्य-पीड़ा के आघात से !—कजरी ने समझने का कोई प्रयत्न ही नहीं किया तो समझ में भी भला कैसे आ पाता !

नीरद की निगाह सामने दादा की कोठरी की ओर उठी, पर तुरन्त ही गिर गई अपने पास की कच्ची जमीन पर।

कजरी चूल्हे की ओर मुड़ गई थी।

नीरद चुपचाप दीवार से पीठ के साथ ही सर भी टिकाए विचारों की उलझन को और भी उलझाने में लग गया था।

"नीरद !"

"हाँ !" वह जैसे नींद से जाग उठा हो।

"यहाँ का काम..."

"काम !"

"हाँ, जिस लिए हम सब आए थे।"

"कुछ नहीं हुआ अभी, शायद दादा उसी में मशगूल हों...."

"और रामबाबू !"

"उन्हें कलकत्ता भेज दिया गया है...." अपने लड़खड़ा रहे स्वर को सम्हालने में उसे सारी शक्ति लगानी पड़ रही है, कजरी से अजाना नहीं; फिर भी वह ज्यों की त्यों बनी रही। हाथों ने चूल्हे को सुलगा कर ही दम लिया। लकड़ियाँ चटाख-चटाख चीखने-चिल्लाने लगीं लाल पीली लपटें उगलती हुई।

दालान में भर गया धुआँ भी धीरे-धीरे बिस्तर गोल करने की तैयारी करने लगा था।

वह कुछ बोल नहीं पाई। चुपचाप पलट कर एकबार देख भर लिया नीरद की ओर।

"भाभी ने और क्या लिखा है...."

"पढ़ नहीं पाई..."

"क्यों?"

"दादा ने मेरी आँखों में आँसू आया देख उसे छीनकर फाड़ डाला...कहते-कहते वह विह्वल हो उठी।

"फाड़ दिया..."

"हाँ, बोले—ऐसी खतरनाक चीजों के पास भी हमें नहीं फटकना चाहिए..."

शाम का झुटपुटा झुकता-झुकता एकदम 'चौरस' हो गया।

कजरी ने दीवट पर की ढिबरी जला ली थी और चूल्हे पर कड़ाही रख कर आलू उबलने को रख दिया था। वातावरण में जाने कैसा भारीपन आ समाया था कि बैठे रहना मुश्किल हो उठा।

"खाओगे कुछ?"

"नहीं कजरी!"

"अच्छा!"

"खाकर आया हूँ, तुम क्या बनाओगी?"

"यही आलू..."

"और?..."

"बस, आटे-चावल से सस्ता आजकल आलू ही है—६ पैसे का डेढ़ सेर...दो-तीन आने में काम चल जाता है...आज आजाद साहब भी तो..."

"हाँ!" नीरद ने एक लम्बा निश्वास लिया।

"पसन्द करेंगे?"

"क्या पता..."

"नीरद !" तभी दादा ने अन्दर से आवाज लगाई । नीरद उठकर चल पड़ा, चुपचाप ।

कजरी फटी-फटी आँखों से उसके डगमगाते पैरों की ओर निहार रही थी ।

आजाद और दादा दोनों ही गंभीर बने बैठे थे । आते ही नीरद ने मार्क कर लिया कि दो महानों के बीच अनुकूल विचार-सीमा नहीं स्थापित हो पाई । आजाद के मस्तक पर बल पड़े हुए थे; मगर दादा अपनी वही स्वाभाविक प्रशान्तता के बीच घिरे थे । नीरद को आने और उसके मिनटों आज्ञा की प्रतीक्षा मे खड़े रहने का आभास दोनों मे होने का लक्षण नहीं दीख पड़ रहा था । कजरी के द्वारा मालूम हुई बातों ने एक तो वैसे ही झकझोर दिया था और जब वहाँ पर गंभीरता का न टलनेवाला साम्राज्य छाया दीखने लगा तो नीरद एकबारगी ही उद्वेलित हो उठा, स्तब्धता काट खाने को दौड़ रही थी ।

"दादा आपने मुझे बुलाया...."

"हाँ !" दादा ने एक झटके के साथ सर उठाया—"देखो तो, कजरी ने कुछ बनाया...."

"आलू उबल चुके हैं लगभग...लाऊ क्या !"

"आजकल पैसे की इतनी...आपके लिए क्या...लाओ !" आजाद की ओर देख, दादा ने कह दिया ।

नीरद के भारी कदम दरवाजे की ओर मुड़े । आते-आते सुना—"आप इतने बीहड़ कार्य में स्त्रियों का होना आवश्यक समझते हैं !" आजाद दादा से पूछ रहे थे । उसे कुछ विचित्र-सा लगा उनका यह प्रश्न, दरवाजे के पास ही ठमक गए पैरों को बहुत चाहकर भी आगे बढ़ा सकने में समर्थ नहीं हुआ ।

"और आप !" प्रश्न के उत्तर में प्रश्न ही था । नीरद के कान और अधिक सतर्क हो गए ।

आजाद कुछ देर तक मौन रहे; फिर—"मैं इसका समर्थक नहीं..."

तभी—पीछे से कजरी ने आकर उसके कंधे पर हाथ रख दिया—"क्या है !"

वह जल्दी से हट गया। कजरी उसके साथ ही थी।

"आलू तैयार है न ?"

"हाँ, क्यों ?"

"दे दो..." कह कर वह चूल्हे के पास आकर खड़ा हो गया। मस्तिष्क में आजाद की बातें अब तक घूम रही थीं। कजरी ने उसके खोयेपन पर ध्यान नहीं दिया। आलू छील-छील कर चीनी की तस्तरी में रखने लगी। नीरद खड़ा-खड़ा सोच रहा था—आखिर आजाद साहब स्त्रियों के प्रति इतने आशंकित क्यों हैं ? सारे बंगाल में न जाने कितनी स्त्रियाँ होंगी दल की और उन्होंने मौका पड़ने पर अपने आपका बलिदान करने में पुरुषों से पीछे पैर नहीं रखा है, क्रान्ति का रास्ता नारी के सम्पर्क से, किसी भी प्रकार अवरुद्ध होगा, इसकी तो कल्पना भी नहीं की जा सकती...फिर भी आजाद जैसे तपे हुए क्रान्तिकारी की ऐसी बेढंगी मान्यता क्यों ? —कुछ समझ नहीं पाया ? निगाहें अपने आप ही कजरी की ओर मुड़ गई। क्या नहीं उपलब्ध है इसको। करोड़पती-परिवार की दुलारी बेटी...ग्रेजुएट...आज भीखमंगों-सी कोटि को अपने उस राजकुमारी-जीवन से नगण्य मानती है !...क्या यह त्याग नहीं ?...क्या पुरुषों को ही त्याग और बलिदान की क्षमता मिली है....और उसकी आँखों के समक्ष झूल उठा—भाभी और कजरी के निशाने का लोहा दल के लगभग सभी सदस्य मानते हैं...दादा जैसे महान् क्रान्तिकारी के निर्माण में भाभी के प्रज्वलन्त व्यक्तित्व का कितना बड़ा हाथ रहा है—इसको दादा गर्व के साथ स्वीकार करते हैं...होगा, वह इस चक्कर में क्यों पड़ना चाह रहा है—आजाद का यह अपना व्यक्तिगत विचार भी तो हो सकता है...

परन्तु इतने बड़े जिम्मेदार क्रान्तिकारी के विचार मात्र व्यक्तिगत नहीं होने चाहिएँ....

"क्या सोचने लगे नीरद !" कजरी ने सर उठाया तो उसे आँखें बन्द किए, विचार-मग्न देख पूछ उठी ।

"ओह, ठीक हो गया..." कह कर उसने जल्दी से आलू की तस्तरी पकड़ी और जल्दी से कोठरी की ओर चल पड़ा । आजाद के द्वारा उठाया गया ज्वार-भाटा मस्तिष्क में हलचल मचाये था ।

बातें अब भी पार्टी और नारी को लेकर हो रही थीं ।

नीरद के लिए अब उसमें कोई दिलचस्पी नहीं रह गई थी । आलू की तस्तरी सामने रख वह एक किनारे बैठ गया । आजाद आलुओं पर हाथ साफ करने लगे ।

"इस पर फिर कभी बहस होगी...इस समय....अमेरिका के कुछ साथियों के द्वारा मशीनगन मँगवाने का बन्दोबस्त किया है...सो पैसा की...वैसे भी हमारा दल काफी असुविधा में पड़ चुका है...सहयोग के बारे में मैं आपसे पहले ही बतला चुका हूँ...आप साथ भले ही न दें, प्रयत्न मे कुछ...."

"अमूल्य बाबू, बंगाल और इस प्रदेश में भयानक अन्तर है... आप ही जैसी परिस्थिति हम सब की भी है, परन्तु जहाँ तक होता है हम सरकार से सीधा मोर्चा लेने से अपने को अलग ही रखना चाहते हैं... आपको विश्वास नहीं होगा पर रामबाबू को भगाने का यह कांड....खैर, छोड़िए भी, देखा जायगा...हम दोनों का लक्ष्य एक ही है इसलिए सहयोग-असहयोग का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता..."

"ठीक है, तो..."

"हाँ, आप मेरे साथ किसी को भेज दें..."

"कृपा..."

"कृपा की क्या बात..."

कजरी पानी रख गई थी। आजाद ने हाथ धोकर पानी पिया।

"इस वक्त अच्छा हो, आप यहाँ अधिक दिनों तक ठहरने का ख़याल न करें..."

"मैं भी यही सोच रहा हूँ..."

"यह ठीक होगा भी।" कहकर आजाद उठ पड़े।

कजरी दरवाजे पर ही खडी थी।

आजाद की भौंहें उसे देखकर तन गईं। वह जल्दी से हट गई।

दादा भी उठ पड़े।

"रामबाबू को तो आपने कलकत्ता भेज दिया है न!"

"हाँ!"

"अगर उनके विचारों का परिवर्तन स्थायी रूप से करने में आपको सफलता मिल जाय...तो...नहीं...." आजाद कोठरी के दरवाजे पर रुके—"मुझे अवश्य सूचित करेंगे...उनकी पत्नी के चारो ओर पुलिस का जाल फैल चुका होगा....काफी सावधानी की जरूरत है...थोड़ी-सी असावधानी भी अनर्थ का कारण बन सकती है....हाँ तो, मेरे साथ आप किसे भेजना चाहते हैं..."

"नीरद!"

"नहीं।"

"......" दादा फक-से पड़ गए।

"इनको वहाँ रहते हुए अनेकों ने देख लिया होगा और मेरे साथ ...समझ रहे हैं न! आप ही चलिए न!..." कहते-कहते वे रुके—"हमें अपना रास्ता फूँक-फूँककर..."

"मैं समझ रहा हूँ..." दादा के मुँह से निकल गया।

"ठीक!" आजाद कुछ और कहने ही जा रहे थे कि बाहर से किसी ने दरवाजे पर धक्का दिया। सभी बुरी तरह चौंक पड़े।

आजाद झपटकर बाहर वाले दरवाजे के पास आ रहे—"कौन!"

उनका स्वर किसी भी परिस्थिति का सामना करने के लिए हृदय की क्षमता का दिग्दर्शन करा रहा था। दादा की प्रशान्तता और भी गहन हो उठी; मगर जब लपकते हुए आजाद ने आकर कहा—"अमूल्य बाबू, आप का यह मकान सरकारी कुत्तों की दृष्टि में पड़ चुका है। शीघ्रता करें..." और वे बिना उनके उत्तर की प्रतीक्षा किए ही, दरवाजा खोलकर बाहर हो रहे। सूचना देने वाला उनका ही कोई आदमी था—ऐसा नीरद ने अनुमान लगाया। दादा की प्रशान्तता पूर्ववत् बनी हुई थी। नीरद को उनकी सैनिक-बुद्धि पर भरोसा था और वह यह भी खूब समझ रहा था कि किसी भी परिस्थिति का मुक़ाबला करने के लिए वे हमेशा अपने आप को आनन-फानन में तैयार कर लेते थे। कजरी भी पास ही खड़ी थी—किसी के भी चेहरे से ज़रा भी घबराने का भाव नहीं प्रकट हो रहा था। दादा ने फौरन सब सामान समेट लेने का इशारा किया और एक होल्डाल में ही सारे घर का सामान समेट लेने मे देर भी नहीं लग पाई। नीरद और कजरी के अतिरिक्त और घर में कोई था भी नहीं। अन्य साथियों के रहने का प्रबन्ध भिन्न-भिन्न मुहल्लों मे था। समस्या थी उन तक कैसे खबर पहुँचाई जाय?—नीरद ने देखा, दादा क्षण मात्र क्षणभर के लिए विचिलित हुए और फिर सम्हल गए।

"नीरद!" उनके स्वर में असाधारण रूप से धैर्य आ गया था—"समय बहुत ही कम है और साथियों तक खबर पहुँचाना भी आवश्यक है...."

"मैं चला जाऊँ!" नीरद के मुँह से सोत्साह निकल गया, कुछ भी करने के लिए वह पूर्णतया सन्नद्ध दीख रहा था।

"नहीं!" उन्होंने कजरी की ओर निगाह उठाई—"कजरी इसे तुमसे अधिक सफलता के साथ कर सकती है...स्त्री पर 'भाई लोगों' की नज़र पकड़कर भी न पड़ेगी—तुमको मेरे साथ चलना होगा....पर, रामबाबू की पत्नी...अच्छा, छोड़ो...कजरी...तुम्हें हमसे स्टेशन पर मिलना है... समझी..."

"हाँ दादा !" कहकर वह दरवाजे की ओर बढ़ी।

"सावधान...रिवाल्वर..."

"ठीक है दादा !" कहकर उसने आँचल के नीचे छिपे रिवाल्वर को टटोला और बाहर हो रही।

तीसरे ही दिन—

अखबारों मे अस्फुट रूप मे समाचार प्रकाशित हुआ—इलाहाबाद मे दुर्दान्त डाकुओं का अड्डा !...रात में पुलिस का शहर में कई स्थलों पर छापा...पर डाकू भाग निकले...कुछ नौकरशाही पिट्ठू अंग्रेजी अखबारों के एडीटरों ने कल्पना का भी सहारा लिया—संभवतः उक्त डाकू दल से क्रान्तिकारियों का भी सम्बन्ध स्थापित हो चुका था या हो रहा था...उनके हाथ में आकर भी निकल जाने से इलाहाबाद की पुलिस-शक्ति परेशान तो है ही—साथ ही उसकी बदनामी भी कम नहीं हुई.... आदि-आदि...

दादा उस समय अपने कई साथियों के साथ इलाहाबाद से बीसों कोस दूर, फूलपुर में पहुँचकर कलकत्ता चलने का इन्तजाम कर रहे थे...

* * * *

हारमोनियम की सधी हुई लय की झनकार कोकिल-कंठ मे घुलकर माधुर्य की झड़ी लगा उठी। प्रभात और संगीत की लहर आपस में मिलकर एकाकार-सी हो गई थी। मौसम मे 'गुलाबीपन' आ गया था। दूर पर फैले हरे-हरे धान के खेतों की सदलाती हुई हवा, रह-रहकर कमरे के दरवाजे और खिडकियों के मासूम पर्दों से छेडखानी करने लगती तो बरबस ही संगीत में घुला वातावरण हाय-हाय कर उठता। मुश्किल से अभी पाँच बजे होंगे। रात के मज़ार पर प्रभात की नींव पड़ने वाली थी। सारा घर इससे अनभिज्ञ-सा लगता था मगर कजरी जाने कैसे आज उठ पड़ी और...

पलंग से सटाकर रक्खे टेबिल पर हारमोनियम रख लिया और तब

गुरुदेव के 'बसन्त-स्वागत' की लहरियाँ बिखर उठीं। गीत मे इतनी सरसता, इतनी मार्मिकता थी कि वह एकदम विभोर हो उठी—

एसो जागर मुखर प्रभाते
एसो नगरे प्रान्तरे बने
एसो मंजीर गुंजन चरणे
एसो गीत मुखर कल कंठे
एसो मंजुल मल्लिकामाल्ये....

गीत की पंक्तियों में वह इतना खो गई थी कि अपने आस-पास की कुछ सुध ही नहीं न रह गई थी। वह थी, हारमोनियम और कठ-स्वर की थिरकन थी और थी गुरुदेव के अन्तर की लहलहाती हुई 'फुलवारी' की गमक—बस, और कुछ नहीं।

विमुग्ध-से जाने कब से दरवाजे पर रायबहादुर साहब खड़े थे, सहसा ही कुछ याद-सा आया उन्हें तो चौंक पड़े—"कजरी!" उनके मुँह से निकल गया।

कजरी ने जैसे कुछ सुना ही नहीं, स्वर और भी अधिक मधुर हो उठा उसका—

एसो कोमल किसलय बसने
एसो सुन्दर यौवन वेगे
एसो दृप्त वीर, नव तेजे...

रायबहादुर पर छाया संगीत का जादू एक झटके के साथ हट गया। धीरे से उसके पीछे आकर खड़े हो गए और तब उन्हें यह देखकर आश्चर्य में डूब जाना पड़ा कि कजरी के गालों पर मोतियों की लड़ियाँ बिखरी पड़ रही थीं। उन्होंने धीरे से उसके कंधे पर हाथ रख दिया—"बेटी!"

कजरी ने चौंककर उनकी ओर देखा और अस्त-व्यस्त-सा उसके मुँह से निकल पड़ा—"पिताजी आप...कब से खड़े हैं यहाँ...मैं..."

उसकी घबराहट देख रायसाहब मुस्करा पड़े—"पगली कहीं

की....'' और उन्होंने आगे बढ़कर उसकी पीठ पर हाथ रख दिया।

"पिताजी !"

"गाना क्यों बन्द कर दिया तूने ?" रायबहादुर उसके पास ही कुर्सी खींचकर बैठ गए—"आजकल सुबह का घूमना क्यों बन्द कर दिया है, बोल ?"

"यों ही, अच्छा नहीं लगता..."

रायबहादुर विचार-मग्न-से हो उठे थे।

"बेटी !"

कजरी ने चुपचाप उनकी ओर आँखें उठा दीं।

"अब तू बच्ची नहीं रही..."

"......"

"इस तरह से..."

"पिताजी !"

"मैं जानता हूँ बेटी, पर..." राय बहादुर का स्वर काँप उठा—"तेरी आजादी में मैं अब तक कभी बाधक नहीं हुआ...."

"जानती हूँ पिताजी..."

"मगर अब..."

"आपको भार लग रही हूँ !"

"उफ् !" उसके इस प्रकार के सीधे प्रहार से तिलमिला उठे बेचारे।

"पिताजी..."

"मैं अब कुछ नहीं कहूँगा बेटी, कुछ नहीं..." उनका स्वर एकदम भारी हो उठा था—"तू खुद ही समझदार है, जो तुझे अच्छा लगे कर....अब से कभी तेरे मार्ग का बाधक बनकर नहीं आऊँगा..." और कजरी के विस्फारित नेत्रों ने देखा—उनकी आँखें छलक आई थीं।

"नहीं पिताजी !"

"बेटी !" आवेग में आकर उन्होंने उसके मस्तक को अपने बिल्कुल पास कर लिया !

कजरी उनकी गोद में लुढ़क पड़ी ।

वे गीली आँखों से उसे बाँहुओं में भरे, सामने दीवार की ओर एक-टक निहारते रहे । काफी देर हो गई ।

"बेटी !"

"पिताजी, इसी तरह अपनी गोद में लिए रहें... मुझे जाने कैसा-कैसा लग रहा है....ओह !..."

"तुझे आखिर हो क्या गया है आजकल ?"

"मुझे तो कुछ नहीं हुआ, आपको मैं बीमार लगती हूँ क्या ?" और वह सम्हलकर बैठ गई । रायसाहब उसे बहुत ध्यान से देखने लगे थे ।

उनकी भेदक दृष्टि से परेशान हो उठी वह । मिनट पर मिनट लदते गए मगर न तो वही कुछ कह पाई और न रायसाहब ही ।

"बेटी, तू जानती तो है मैं बूढ़ा होता जा रहा हूँ और इस बुढ़ापे की नाव का ठिकाना भी क्या !—तुझे यह समझाने की जरूरत नहीं । अपने भाइयों के ढंग से तू अनजान नहीं...तुझको अपनी आँखों के सामने ही किसी के संरक्षण में सौंप दूँ—मेरे जीवन की यही एकमात्र साध बाकी बची है...तेरी माँ नहीं है.. अगर वह होती तो मुझे इतना परेशान कभी न होना पड़ता...मेरी काजू मेरी बच्ची..."

"पिताजी !"

"बेटी..."

"मुझे माफ कर दें पिताजी और न मन में इस शंका को स्थान ही दें कि आपकी की कजरी कभी कोई ऐसा काम करेगी, जिससे खानदान की ऊँची नाक पर...आप मुझपर विश्वास क्यों नहीं करते पिताजी...मैंने कोई भी ऐसा काम नहीं किया, जिससे आपको तनिक भी पीड़ा हो..."

"मेरा विश्वास है बेटी....पर..."

"पर मन नहीं मानता, यही न ?"

"हाँ बेटी!"

"इस मन के आप इतने गुलाम क्यों हैं ?" कहती हुई वह धीरे से पलंग के नीचे आ रही और जल्दी-जल्दी खिड़कियों के पर्दे उघाड़ आई।

"मजबूरी..."

"पर क्यूँ ?"

रायसाहब ने अपनी जेब से निकालकर एक लिफाफा उसकी ओर बढ़ा दिया। लिफाफे के ऊपर देखते ही कजरी सन्न रह गई। वह बनारस से उसकी ननिहाल से भेजा गया था और उसमें क्या है, यह समझते भी देर नहीं लग पाई। इस बार दादा के साथ महीनों की 'ट्रिप' के लिए ननिहाल ही का बहाना बनाया था। पर...उसकी आँखों के समक्ष अंधेरा छाने लगा। कुछ समझ नहीं पा रही थी कि आखिर, पिताजी के मन में इस ओर से इतना सचेष्ट रहने की आवश्यकता किसलिए महसूस हुई। क्या उनको क्रान्ति-दल में शामिल होनेवाली बात मालूम हो गई है ? मगर यह हो भी कैसे सकता है !—असम्भव-सी चीज़...

उसके पैर बुरी तरह लड़खड़ाये। रायसाहब ने दौड़कर सम्हाल न लिया होता तो निश्चय ही सीमेंट के फर्श से टकरा उठती। रायसाहब ने उसे सम्हालकर पुनः पलंग पर बिठा दिया। एकाएक उसकी ऐसी हालत हो जाने से अत्यन्त चिन्तित हो उठे थे वे—"बेटी मुझसे इतना दुराव क्यों रखती हो ?...पगली, कहीं कोई अपने जन्मदाता के ऊपर भी इस तरह का अविश्वास करता है। इतनी बड़ी हो गई, पर अक्ल के नाम पर वही चार-पाँच की बच्ची बनी हुई है..." रायसाहब उसके मुँह से मुँह सटाकर कहने लगे—"कुछ छीपाने के पहले तूने यह भी न सोचा कि इससे तेरे बूढ़े बाप का कलेजा टूक-टूक होकर रह जाएगा और कजरी, तूने यह अनुमान ही कैसे लगा लिया ? मैंने आज तक तेरी किसी भी इच्छा का इनकार किया है; जो कुछ भी करने में सुख होता, वह मेरे मोक्ष एवं

दुख का कारण कभी बन ही नहीं सकता—इसे समझते हुए भी तूने..."
इतनी देर तक धारा-प्रवाह बोलते रहने के कारण रायसाहब जोर-जोर से हाँफने लगे। खाँसी का दौर तेज हो उठा।

कजरी निश्चेष्ट-सी पड़ी रही। कुछ कहने के लिए मुँह खुलता मगर स्वर की हत्या हो जाती थी, रायसाहब की करुणा की चोट खाकर।

कुछ देर तक हाँफने-खाँसने का दौर बरकरार रहा। सेठजी को दौरे का पुराना रोग था। उनकी करुणार्द्र हो गई मुद्रा देख कजरी हाहाकार कर उठी।

"पिताजी!" वह उनके तूफान बने कलेजे से सर टिकाकर सिसक उठी—"मुझे माफ कर दो...मैं तुमसे कुछ भ नहीं छिपाऊँगी—सब कुछ साफ-साफ कह दूँगी...."

"मेरी बच्ची, मेरी सर्वस्व..."

"पिता जी!"

"तू क्या करती रही है इन दो महीनों में..."

"सुनिए पिताजी...नहीं, मैं सुनाऊँगी...नहीं-नहीं यह कभी संभव नहीं, कभी नहीं...प्रतिज्ञा...उफ्!" आन्तरिक आन्दोलन से आक्रान्त उसका मस्तिष्क बहकने लगा।

राय साहब के हाथ-पैर सूज उठे। काटो तो खून नहीं। भोली-सुकुमार, चिड़ियों की भाँति रात-दिन फुदकने वाली गुड़िया-सी कजरी, उनकी बच्ची इतना सारा रहस्य अपने आप में समेटे है—कभी कल्पना भी नहीं की थी उन्होंने। कजरी बदहवास-सी पड़ी लम्बी-लम्बी साँसे ले रही थी।

"बेटी!" राय साहब की वाणी स्नेहार्द्र थी, धीरे-धीरे उसके मस्तक पर हाथ फेरने लगे वे—"अगर कुछ वैसी बात हो तो कह मत....लिखकर सब कुछ बतला देना—गलती सभी करते हैं, मगर जो कुछ होना था सो तो हो ही चुका। गलती से बचने की सावधानी, हो जाने के बाद एकदम निस्सार प्रतीत होती है। तू मुझे साफ-साफ बतला दे, एक पिता

के नाते नहीं, बल्कि एक मित्र-सहयोगी-सलाहकार मान कर। और यह विश्वास रख कि यह बूढ़ा अपने कलेजे से कभी नाराज नहीं होगा!"—कहते हुए राय साहब भारी हृदय और डगमग कदमों से उठ कर कमरे के बाहर निकल गये।

कजरी की आँखों से खारे नीर की झड़ी लग गई थी।

जाने कब तक सुबकती रही।

दोपहर बीत गई मगर वह पलंग से उठी नहीं। रायसाहब ने कई बार बहुओं तथा पोतों को भेजकर उसे उठाने का प्रयत्न किया मगर सफल नहीं हुए।

सारे घर में एकबारगी आश्चर्य फट पड़ा।

भाई-भाभियों से उसकी पहले से ही नहीं पटती थी, सो आश्चर्य में डूब कर भी सब परेशानी के अतलतल में नहीं पड़े।

रायसाहब सब कुछ समझ रहे थे।

उफ्!

वे रह-रह कर अपना मस्तक पीट लेते थे। कजरी की एक दम की स्वतन्त्रता ही सारे झगड़ों की जड़ है। सम्बन्धियों तथा परिचितों ने कई बार इस ओर से उनको सतर्क करना चाहा। परन्तु स्नेह की अथाह गंगा मे माघ फागुन की बरसात जैसी चेतावनियों का असर जो होना चाहिये था, वही हुआ।

अनुमान लगाने लगे—

वही।

इसके सिवा और कुछ होगा भी क्या? जवानी के दिन तूफानी किसके नहीं हुआ करते?...जवानी की ऐसी गलतियों के प्रति थोड़ी भी असावधानी अनर्थ की जननी हो सकती है, जब कि कुछ औदार्य, थोड़ी भी सावधानी, गलती को जीवन के 'स्वर्णवितान' मे परिणत करने की क्षमता रखती है।—रायसाहब उम्र में बूढ़े होते हुए भी विचारों में

एकदम आधुनिक थे। साहित्य से भी अभिरुचि रखते थे। उनकी कई पुस्तकें, बँगला-भाषा में पर्याप्त ख्याति एवं स्थायित्व पा चुकी थीं। सुधारवादी मत के उन्नायकों में उनका नाम बंगाल में बड़ी आदर के साथ लिया जाता था।

मामला काफी आगे तक बढ़ चुका लगता है...

उन्होंने सोचा!

देखा जायगा—

शादी कर देंगे।

ब्रह्म समाज का प्रहार सम्हालने में उनके व्यक्तित्व को कोई अधिक असुविधा का सामना नहीं करना पड़ेगा।

मगर कहीं वह अयोग्य हुआ तो?—तब की कल्पनामात्र से उनके शरीर में झुरझुरी-सी व्याप्त हो गई।

चिन्तन का क्रम और अधिक दूर तक नहीं चल पाया।

बेचैनी से उठकर टहलने लगे। टहलते-टहलते दोपहर सन्ध्या में 'कन्वर्ट' हो गई; फिर भी कजरी के उठने का कोई आभास नहीं मिल पाया उन्हें। स्वयं जाने की इच्छा कई बार हुई मगर कजरी की वह मुद्रा बरबस ही उनके समक्ष कौंध उठती और तब इच्छा वहीं दब-पिसकर रह जाती। जाने कितनी ही बार उनकी कलम ने इससे कहीं भयानक समस्याओं का समाधान निकाल फेंका होगा और आज जब वही चीज अपने सामने आ पड़ी है तो...

मानव की विवशता पर उनका मन बुरी तरह से फुँक उठा।

छोटी बहू से पूछा तो पता चला—

वह चार ही बजे घर से कहीं घूमने के लिए चली गई है।

सुनकर उन्होंने सन्तोष की साँस ली।

तभी बाहर से किसी को फाटक के अन्दर आते देख वे चौंक कर उठ खड़े हुए।

बैठक में चले आए।

तुरन्त ही चपरासी ने आकर पूछा—"सरकार, कोई साहब..."

"भेज दो!"

चपरासी चला गया।

और थोडी ही देर बाद—कलकत्ता सी० आई० डी० के एक इन्सपेक्टर ने अन्दर प्रवेश किया।

आते ही उसने एक लम्बी सलामी दी।

"कहिए भटनागर साहब..."

"यों ही चला आया रायसाहब..."

"बैठिए...बड़ी कृपा..." कहते हुए रायसाहब ने सामने पड़ी कुर्सी की ओर इशारा किया। वह जब बैठ गया तो उन्होंने उसकी मुद्रा के भावों का अध्ययन आरंभ किया और कुछ देर बाद—"लगता है, आप मुझसे कुछ कहना चाहते हैं..."

"जी!" वह आश्वस्त-सा हो गया।

"कहिए-कहिए..."

"राय साहब, मिस रायसाहब के सम्बन्ध में हमें कुछ सूचनाएँ मिली हैं..."

"सूचनाएँ!...कैसी!" रायसाहब बेतरह चौंके।

"बात बड़े आश्चर्य की है रायसाहब...."

"...." रायसाहब की साँसों की गति उल्टी हो उठी थी।

"उनका साथ कुछ भयानक आदमियों से हो गया है..." वह फुसफुसाया।

"भयानक आदमी!"

"जी!"

"मतलब!" रायसाहब की धड़कनें तेज हो उठीं; धमनियों में लहू जमने-सा लगा।

"मतलब वे क्रान्तिकारियों के सम्पर्क में आ गई हैं। इस सम्बन्ध में अभी कुछ निश्चित नहीं कह सकूँगा...फिर भी ऐसी कोई बात हुई तो...."

रायसाहब घबरा गए।

"बहुत संभव है, यह मात्र भ्रम ही हो..."

"ऐसा कभी नहीं हो सकता...कभी नहीं....एकदम असंभव-सी चीज़ है यह..." और वे कुर्सी से उठ पड़े; परन्तु तुरन्त ही पुनः बैठ भी जाना पड़ा।

"आपके मुझपर बहुत सारे एहसान लदे हुए हैं रायसाहब, इसलिए सूचना देना आवश्यक समझा और फिर यह मेरा धर्म भी तो था..." कहता हुआ वह उठ पड़ा। आदरपूर्वक नमस्कार कर जाने लगा तो इतना आश्वासन देना भी नहीं भूला—"मुझसे आपका कोई भी अनिष्ट नहीं होने का मगर दूसरों को रोकना मेरे लिए कभी संभव नहीं...फिर भी..."

"ओह, धन्यवाद!" रायसाहब कह उठे।

वह चला गया।

उसके जाते ही रायसाहब गद्दे पर धम्म से गिर पड़े।

कजरी!

जो रात में अकेले कमरे से बाहर निकलने में काँपती है।

कजरी!

जो बाईस साल की हो जाने पर भी अपना दस-बारह साल वाला बचपना नहीं भूल सकी है और कभी-कभी पैसों के लिए ठुनककर उन्हें परेशान कर देती है।

वही कजरी क्या क्रान्तिकारी दल के सम्पर्क में आ सकती है?

नहीं। कभी नहीं।

क्रान्ति!

कजरी!!

भयानक अन्तर!

एक दूब-सी सुकुमार तो दूसरी बबूल के काँटों-सी बीहड़; एक अमृत-सी मधुर तो दूसरी हलाहल-सी कराल...

जाने कितनी देर तक तुलनात्मक विवेचन में लगे रहे।

एकाएक ध्यान आया—

रात हो गई और शायद कजरी अभी तक घूमकर वापस नहीं आई।

आशंकाओं से घिरा उनका हृदय बड़ी जोर से मरोड़ खा उठा।

कहीं रास्ते में उसे कुछ हो तो नहीं गया?

"बेवकूफ लड़की!" अपने आप ही कह उठे रायसाहब—"अपने बूढ़े बाप को प्रताड़ित करने में तुझे क्या मिल रहा है?"

बाहर से कोई अन्दर आया।

उनकी आँखें आशा लिए लपकीं; मगर वह उनकी रसोईदारिन गंगा थी।

निराशा का झापड़ खाकर तिलमिला-से उठे।

"महराजिन!"

"बाबूजी..."

"देख तो, बिटिया क्या कर रही है?" उसके चले जाने के बाद अपने बेवकूफों जैसे प्रश्न पर खुद झुँझला उठे।

महराजिन आकर कह गई—वह घर में नहीं।

चिन्ता के बादल घिर आये और आशंकाओं की भयानक 'झिमिर-झिमिरी, आरम्भ हो गई।

जाड़े की रात को जैसे पंख लग गए थे...

• •

मन की अशान्ति की गठरी सम्हाले कजरी को इधर-उधर चक्कर काटते दस बज गए मगर दस सेकेंड के लिए भी गठरी का बोझ कहीं हलका नहीं हो पाया। सहेलियों का नाम याद कर-करके गई, पार्कों का कोना-कोना छान मारा; परन्तु बोझ भीगा हुआ कम्बल ही बना रहा। मन में यह सहसा क्या आ समाया है कि हवा में उड़ते सूखे पत्ते की तरह हलकी-फुलकी वह, एक दम बोझिल हो उठी है—अनेक बार टटोलने-समझने का प्रयत्न किया, पर हाथ कुछ आया नहीं। कई बार दादा के के पास जाने की इच्छा का बड़ी निर्दयता से गला मरोड चुकी है और वह ऐसा क्यों कर रही है—यही तो वह पहेली थी, जिसने उसे तूफान के बीच ला पटका था। फुटपाथ से चलते-चलते एकाएक उसके कदम ठमक गए। बगल की एक दूकान से नीरद निकल रहा था। उसे बुलाने के लिये मन छटपटा उठा, पर पास ही लहर रहे द्वन्द्व के भाटे ने देखते ही देखते मन की छटपटाहट से मर्माहत फूटने वाले स्वर को अपने आप में समेट लिया। नीरद झपटता हुआ आगे बढ़ चुका था। विह्वल, विस्मृत वह भी दौड़ी जा रही थी और जब उसके निकट पहुँचकर, एकबारगी ही लिपट गई तो अचकचाए नीरद ने देखा—वह बड़ी जोर से हाँफ रही थी, अगर उसने सम्हाल न लिया होता तो निश्चय ही पक्के फुटपाथ से टकराकर घायल हो जाती।

"तुम...कजरी...हो क्या गया है तुम्हें ?" बड़ी मुश्किल से निकल पाया उसके मुँह से। आस-पास कलकत्ते की व्यस्तता खुलकर खेल रही थी।

"नीरद !..." उसके हाथों को सारी ताक़त लगाकर जकड़ लिया था उसने, आँखें स्थिर हो उठी थीं—"तुम...तुम..."

नीरद की परेशान-शंकालु दृष्टि अपने आस-पास बड़ी सतर्कता से

दौड़ी—"उफ्, तुम पागल तो नहीं हो गई हो...हम हरिसन रोड पर खड़े हैं कजरी...सम्हालो अपने को..." और वह बिना उसकी कोई बात सुने, लगभग खींचता हुआ जल्दी से मेन रोड से एक लेन में घुस गया।

एक अँधेरे कोने में आकर उसने कजरी को झकझोर दिया—"तुम्हें क्या हो गया है...ओह, तुम्हारा पागलपन अगर..."

कजरी को झटका-सा लगा। हत्चेतन मस्तिष्क में विद्युत लहर दौड़ गई—"ओह !...मैं पागल हो गई हूँ नीरद...एकदम पागल...."

नीरद आश्चर्यचकित-सा निहारता रहा उसे। कुछ समझ में नहीं आ रहा था और वहाँ रुककर समझने की कोशिश करने का मौका भी तो नहीं था !

कजरी उसके सहारे खड़ी थी, पैर के साथ ही उसका शरीर भी काँप रहा था। नीरद को लगा कि अगर कुछ ही देर वह इसी तरह से खड़ी रही तो क्रमशः बढ़ रहा कम्पन, उसे बेहोश हो जाने को मजबूर कर देगा और तब बेहोश कजरी को सम्हालकर कहीं ले चलना, एक समस्या बनकर रह जायगा। क्या करे !—जल्दी-जल्दी मे कुछ निश्चय नहीं कर पा रहा था। मगर ऐसे कबतक !—भागते हुए समय के साथ कजरी की जबाब दे रही शक्ति के अहसास ने चेतावनी का चटकना लगाया और तब वह कजरी को सम्हाले, लपकता हुआ लेन पर लेन का 'सफाया' करने लगा। ग्यारह बज चुके थे, कैलेंडरों ने तारीख बदलने की तैयारी शुरू कर दी थी। भरसक अपने को मेनरोड से बचाता हुआ नीरद, कजरी के साथ जब दादा के घर के पास पहुँचा, तब दो बज रहे थे।

इस बीच दोनों में से किसी के मुँह से एक शब्द भी नहीं फूटने पाया था। दादा के दरवाजे पर आकर नीरद ने सन्तोष की एक लम्बी साँस ली।

"कजरी !" वह अपने आप में ही बुत बनी खड़ी थी, नीरद के बुलाने का आभास तक नहीं हुआ उसे। नीरद उसकी हालत से और

भी उद्विग्न हो उठा—"कजरी...कजरी...बोलो न!" उसे झकझोरता हुआ वह पागल की तरह चीख उठा—"उफ्! तुम्हें हो क्या गया है?"

कजरी की ढँपी हुई पलकें उठीं—"आह, नीरद...मेरा सर... उफ्! मैं उड़ी जा रही हूँ...नीरद..."

तब तक दादा ने आकर दरवाजा खोल दिया—"कौन!" उनका बड़ा ही गंभीर स्वर आस-पास फैले अँधेरे से टकराया।

"मैं हूँ दादा..." उसका स्वर बुरी तरह लड़खड़ा रहा था। दादा के हाथ की टार्च की रोशनी दोनों पर पड़ी। कजरी की आँखें अजीब तरह से चमक उठीं। सामने दरवाजे के बीच में खड़े दादा को उसने देखा तो अनायास ही सनसनी से नहा उठी। नीरद ने उसे अन्दर करके दरवाजा बन्द कर लिया। इतनी रात को कजरी को उस अवस्था में देख, दादा आशंकित-से हो उठे थे। गलियारे में जलते मीठे तेल के दिए के प्रकाश में कुछ देर तक सभी स्तब्ध खड़े रहे। दादा की तीक्ष्ण दृष्टि स्थिति का स्पष्टीकरण पाने का अनवरत प्रयास कर रही थी।

"नीरद!"

"दादा! कजरी को जाने क्या हो गया है...अजीब दशा...कुछ समझ में नहीं आ रहा है..." कहकर उसने कजरी की ओर निहारा।

"कजरी!"

"दादा!..."

दादा ने आगे बढ़कर उसकी कलाई पकड़ ली।

"क्या हुआ है तुम्हें?"

"दादा!...." कजरी के मुँह से स्वर ही नहीं फूट पा रहे थे— "मैं....मैं...मुझे जाने क्या हो गया है दादा..."

दादा कुछ देर मौन खड़े रहे, फिर कजरी की कलाई पकड़े-पकड़े ही सीढ़ियों की ओर घूम पड़े।

नीरद ने भी दादा के कदमों का साथ दिया।

ऊपर दो ही कमरे थे। एक से शायद रसोई का काम निकाला जाता था और दूसरा सोने के काम आता था।

ज़मीन पर बिछी दरी पर कम्बल ओढ़े कोई सो रहा था। पास ही लकड़ी का एक स्टूल पड़ा था। दादा ने उस पर बैठते हुए नीरद और कजरी को सामने के बेंच पर बैठने का इशारा किया। कजरी अब काफ़ी सम्हल गई-सी लगती थी। कुछ देर पहले की विह्वलता, खोयापन, परेशानी एकदम गायब। दादा बहुत ध्यान से उसे देख रहे थे। छोटी-सी लालटेन की फीकी रोशनी से कमरे में मनहूसियत छा गई लगती थी।

"कजरी..." दादा ने कहा, स्वर बहुत मृदु और थोड़ा गंभीर था—"क्या हुआ...कोई भी चीज़ छिपाओगी नहीं..."

काँपते-अँटकते स्वर में कजरी सब कुछ सुना गई—"पिताजी मेरी गति-विधि पर तीखी निगाह रखने लगे हैं ..और दादा, अब लगता है, अपने व्यक्तित्व की प्रगतिशील दृढ़ता, समाज की सन्देही-दृष्टि के सामने टिक नहीं पायेगी और शीघ्र ही...." कहते-कहते वह रुक गई।

"शादी कर देंगे—यही न?" दादा मुस्करा पड़े। नीरद आश्वस्त हो रहा।

आवाज से सोने वाले की नींद टूट गई—"अरे, कजरी...इस समय...क्या बात है भाई..."

दादा हँस पड़े, बड़ी विचित्र थी उनकी हँसी—"तुम्हें नहीं मालूम नलिनी, कजरी का दिमाग खराब हो गया है...शादी के नाम से..."

"शादी!..." वह आश्चर्यचकित-सी उठकर बैठ गई—"क्या कह रहे हो? कजरी की शादी हो रही है...विचित्र बात..."

"विचित्र बात क्यों?"

"एकाएक यह सब...."

"इसमें अस्वाभाविक क्या है नीरू, रायबहादुर को अपनी इज्जत का तो खयाल होना ही चाहिए..."

"सो तो है...पर..." नलिनी उठकर खड़ी हो गई, प्रसूता होने के इतने निकट होकर भी उसमें अपूर्व स्फूर्ति थी। माथे का बड़ा-सा जख्म जो सूख गया था, पीले पड गए शरीर का गहना बन गया था। धीरे से उसके पास आकर खड़ी हो गई—"और तू शादी के नाम से इतनी घबरा क्यों उठी है...बिल्कुल कायरों जैसी बात...सचमुच तू पागल है कजरी..." और खींचकर उसको अपने बिस्तर पर ला बिठाया।

दादा चुपचाप विचार-मग्न थे। नीरद बेंच ही पर ऊँघने लगा था।

"भाभी..."

"पागल.. तू अपनी भाभी को ही देख..."

"पर भाभी...."

"मैं समझती हूँ तेरा तर्क...पर इससे इतना घबरा जाना ठीक नहीं..."

"पिताजी से अब कुछ छिपा नहीं रहा भाभी..."

"क्या !" नलिनी के साथ ही दादा और ऊँघता हुआ नीरद भी चौंका—"उन्हें सब कुछ मालूम हो गया ?..."

"मुझे तो ऐसा ही लगता है...."

"सो कैसे ?...उनको यह मालूम हो गया कि तू दल की सदस्या है और..."

नलिनी सहसा कुछ बोल नहीं पाई।

"बोल न कजरी !"

"हाँ, वे मेरी गतिविधि पर शक की नजर रखने लगे हैं और इसीलिए जल्दी से जल्दी..."

नलिनी फक्क और दादा परेशान हो उठे।

"दादा !" नीरद का आशंकित स्वर था—"कजरी की शादी हो जाना क्या आप उचित समझेंगे ?"

दादा कुछ सोचते रहे।

"दादा !"

"नहीं नीरद, यह ठीक तो नहीं पर..."

कजरी की धड़कनें तेज हो उठीं।

"पर किया ही क्या जा सकता है, कहने भर से काम नहीं चलेगा, हमें कुछ न कुछ तो करना ही पड़ेगा...चाहे जो हो..."

"सो तो है नीलू...."

"जो कुछ भी हो...."

"मगर हमारी स्थिति...सरकार हमें पीस देने के लिए बिल्कुल तैयार हो उठी है और तुम्हें यह नहीं मालूम, कजरी अगर लौटकर घर नहीं गई तो रायबहादुर कभी चुप नहीं बैठेंगे और कलकत्ते मे अधिक दिनों कजरी को छिपाए रखना हमारे लिए कभी संभव भी नहीं...मेरे तो कुछ समझ मे नहीं आता नीलू...क्या किया जाय ?...फिर तुम्हारी हालत..."

"देखा जाएगा...तुम कजरी..." उसकी मुद्रा से किसी कठोर निश्चय की ज्योति फूटी पड़ रही थी—"तुमने क्या निश्चय किया ?"

"भाभी !" वह हतबुद्धि-सी हो रही थी।

दादा उद्विग्न टहलने लगे थे।

नीरद गंभीर बना बैठा था।

"बोलो !"

"जो आप समझें !"

"अपनी बात बताओ कजरी..."

"अपनी ?...."

"हाँ ! तुमने क्या निश्चय किया है ?"

"..." कजरी पर सहसा फिर मौन छा गया। सहमी-सी नीलिमा की आँखों में झाँकने लगी।

दादा घबरा उठे।

पर नलिनी अडिग बनी रही।

"भाभी !" नीरद से रहा न गया—"आपका स्वास्थ्य...इतनी चिन्ता ठीक नहीं..."

नलिनी ने घूर कर नीरद की ओर देखा—"नीरद !"

नीरद ने सहम कर आँखें झुका लीं।

दादा का टहलना बन्द हो गया था।

"नीलू !"

नलिनी ने उनकी ओर देखा, आँखों में बड़ा-सा प्रश्न-चिह्न अंकित था।

"कजरी को इस समय घर जाने दो...."

"फिर ?"

"फिर इस पर विचार किया जायेगा..."

"ठीक है !....मगर इतनी रात तक गायब रहने का क्या जवाब दोगी तुम कजरी ?"

कजरी ने कुछ कहा नहीं।

"वह समझा लेगी...और हाँ, तुम बिल्कुल चिन्ता न करो... हमारा निर्णय तुम्हें बहुत जल्द मिल जायेगा...." और उन्होंने प्यार से कजरी की पीठ थपथपाई।

कजरी को आश्वासन-सा मिल गया।

"अब तुम जाओ !...नीरद तुम्हें पहुँचा आएगा..."

कजरी धीरे से उठी—"बेकार दादा..."

"नीरद, कजरी को कोठी तक छोड़ आओ और देखना, कोई यह न समझ पाये कि तुम दोनों साथ हो..." कहकर दादा नलिनी के बिछावन पर बैठ गए। कजरी के पीछे-पीछे नीरद भी सीढ़ियाँ उतरने लगा। महानगरी की चहक विधवा की माँग की तरह सुनी तो न थी, पर लगता था 'उसका' सुहाग धूमिल-सा पड़ता जा रहा हो। दिन भर पीसता हुआ सड़कों का कलेजा, आराम की साँस ले रहा था। कजरी अपने आप में

डूबी, धीरे-धीरे चली जा रही थी। नीरद उससे पचीस-तीस क़दम के फासले पर लापरवाही की चाल से चल रहा था। उसकी चाल लापरवाह भले ही थी पर शरीर का रोम-रोम असाधारण रूप से सावधान था। उड़ती-उड़ती नजर से सामने जाती कजरी की ओर देख लेता और तब फिर वही लापरवाही। चाल-ढाल से देखकर कोई भी उसे मिल के मजदूर से अधिक कुछ नहीं समझ सकता था।

अब तक किसी पुलिस वाले की निगाह उनपर नहीं पड़ सकी थी। नहीं तो दो-ढाई बजे रात इस तरह से संदिग्ध रूप में चलने वाले को कम कठिनाई, कम खतरा नहीं था। फिर कजरी जैसी 'अपटूडेट' युवती को इस तरह से अकेली, पैदल चलते देख, कोई भी आश्चर्य एवं शंका में पड़ जाता—पुलिस वालों की तो बात ही क्या?—नीरद आशंकित-सा हो उठा। उसे रह-रह कभी कजरी और कभी दादा पर खीझ आती कि...एक झटके के साथ ही उसकी सतर्क दृष्टि से छिपा न रहा कि बगल के एक सस्ते-मामूली होटल से कूद कर कोई कजरी के पीछे हो रहा है। उसका दिल जोरों से धड़क उठा मगर दूसरे ही क्षण उसका दाँयाँ हाथ फुलपैंट की जेब में पड़े रिवाल्वर से खेलने लगा। पैरों में और अधिक लापरवाही आ गई। उसने चौंक कर देखा—कजरी और उसके बीच में आने वाले ने रुक कर सिगरेट सुलगाई और फिर अपने को कजरी के अधिक पास पहुँचाने का प्रयत्न करने लगा। नीरद के क़दमों में भी तेजी आ गई। उसे विश्वास हो गया, जल्दी ही कजरी किसी संकट में पड़ना चाहती है।

क्या जाने कजरी को इसका कुछ आभास मिला भी या नहीं—एक बार थोड़ा मुड़ कर देखा—कजरी अपनी उसी स्वाभाविक चाल में बढ़ी जा रही थी। उफ्!—कोई गुण्डा मालूम पड़ता है!—और तब वह दौड़ने लगा था। वे इस समय एकदम सूनी पड़ी सड़क पर से चल रहे थे। चौंक कर देखा—आस-पास अत्यन्त निम्नकोटि के छिटपुट

मकानों का सिलसिला बिखरा पड़ा था। बिजली की भाँति उसके मस्तिष्क में कौंध गया—अवश्य ही कजरी के साथ ही वह खुद भी रास्ता भूल गया है। पास ही से उठ रही बदबू ने बताया—यह बूचड़ों तथा मछुओं के मुहल्ले के बीच आ पड़ा है।

अचानक ही—

कजरी एक झटके के साथ घूम कर खड़ी हो गई।

नीरद की साँस तेजी से चलने लगी। जेब में पड़ा हाथ बाहर हो हो गया—रिवाल्वर के साथ। कजरी घूम कर खड़ी हो गई तो पीछा करने वाला क़दम बढ़ा कर उसके और पास हो रहा। नीरद एक ही उछाल में उसके सर पर सवार हो जाने के लिए एकदम सन्नद्ध था।

"आप कौन ?" अपने चेहरे पर टार्च की रोशनी महसूस करते ही कजरी तड़प कर पूछ उठी।

नीरद ने अपने को कूड़ा फेंकने के एक डब्बे की आड़ में कर लिया था। हाथ का रिवाल्वर अपना निशाना साध चुका था।

वह कुछ देर तक मौन रहा।

"बोलते क्यों नहीं ?" कजरी पुनः तड़पी।

"अरे यही सवाल मैं आपसे भी तो कर सकता हूँ, मिस कजरी !"

मिस कजरी !

"यह तो कोई गुण्डा नहीं मालूम पड़ता !" नीरद फुसफुसाया, वह अब और भी सतर्क हो उठा था।

"आप..."

वह मुस्कराया।

"कहाँ से आ रही हैं आप !"

"मतलब ?" कजरी को स्थिति का भान हो चुका था। मन में बहुत-सी घबराहट होने पर भी मुद्रा तथा स्वर स्वाभाविक थे, घबराहट से एकदम बरी।

"आपको शायद मालूम नहीं मिस साहब कि यह कौन-सा मुहल्ला है!"

"मालूम है !"

"अच्छा !"

"जी हाँ।"

"खबरदार, हाथ ऊपर ही रखिए मिस कजरी...मुझे मालूम है, आपके 'दादा' साहब इतने बेवकूफ नहीं कि रात के दो बजे कलकत्ते जैसे शहर में एकदम अकेली जाने को कह कर भी रक्षा के लिये रिवाल्वर...मेरे हाथ का रिवाल्वर आप देख रही हैं न !...आपने कुछ भी हिलने-डुलने का प्रयत्न किया कि...मैं शाम से आपका पीछा कर रहा हूँ..."

कजरी को काटो तो खून नहीं। न चाहकर भी उसे घबरा उठना पड़ा। इस गड़बड़ी में उसको यह भी याद नहीं रहा कि उसके साथ नीरद भी आ रहा था। एकबारगी ही उसे याद हो आया वह, टूटते हुए दिल को आधार मिला। बेचैनी से एक बार उसने सामने देखा, पर नीरद कहीं दिखाई न पड़ा तो फिर घबरा उठी।

"आप आखिर हैं कौन ?" अपने मस्तक की ओर तने रिवाल्वर की बिना कुछ परवाह किये पूछ बैठी।

"शायद आप मुझे पहचानती नहीं...कुछ ही दिन हुए यू० पी० से आया हूँ...."

"यू० पी० से !"

"जी, मगर बातों में फँसा कर मुझे बेवकूफ बनाने का प्रयत्न न करें...आपके साहस की प्रशंसा करता हूँ....अपने को अब गिरफ्तार..."

तभी—'धाँय !' की एक आवाज और इन्सपेक्टर साहब के मुँह से निकली 'हाय' और इसके बाद ही—धाँय....धाँय...धाँय' अनवरत रिवाल्वर की गर्जना ! इन्सपेक्टर साहब गिर पड़े थे। नीरद के साथ भागती हुई कजरी को उन्हों ने देखा, घायल हाथों ने फायर भी किए पर तब तक दोनों रिवाल्वर की पहुँच के बाहर थे।

रिवाल्वर के धड़ाकों की आवाज सुनकर आस-पास के मकानों से कई आदमी निकल पड़े। इन्सपेक्टर साहब ने बेहोश होते-होते केवल इतना ही कहा—"उफ्...पकड़ो...पकड़ो....धोखा..."

मगर बेचारे पकडते भी तो किसको ?

सारे मुहल्ले में हलचल मच गई, इन्सपेक्टरसाहब बेहोश हो चुके थे।

उधर—

"ओह, तुम घायल हो गई हो कजरी..."

"चले चलो, मामूली-सा घाव है..."

भागता हुआ नीरद् रुक गया।

कजरी के मस्तक को छीलती हुई एक गोली यों ही निकल गई थी; मगर कमर के नीचे जाँघ में शायद....रक्त स्राव भयानक रूप से हो रहा था। उसे रुका हुआ देख, कजरी झुँझलाई मगर रक्त के बहते हुए पर-नाले के साथ उसकी सारी शक्ति भी निकल चुकी थी। वह वहीं सड़क पर बैठ गई और तुरन्त ही उसे लेट भी जाना पडा। नीरद् धम्म से उसके पास बैठ गया—"कजरी..." उसका कंठ आर्द्र हो उठा।

"नहीं नीरद्....अपने को बचाओ...दादा....वह बहुत कुछ संभव है, जी रहा हो...तुम्हारी गोली....आह...वह सब कुछ जान चुका है नीरद...दादा...मेरी चिन्ता मत करो...मुझे यहीं छोड़ दो...अपने को बचाओ नीरद् गोली की आवाज से बाहर सडक पर...ओह, बहुत जल्दी ही पुलिस..." क्षण प्रति क्षण उस पर बेहोशी छाती जा रही थी। नीरद् की आँखें भर आईं। अपने हृदय में जाने क्यों कजरी के लिये ममता का सागर उमड़ता महसूस किया उसने। इन्सपेक्टर वाला घटना-स्थान अधिक दूर नहीं था...किसी भी क्षण। अपना कर्त्तव्य उसने आनन फानन में निश्चित कर लिया और झटकर अपनी कमीज उतार कर किसी तरह कजरी की जाँघ को कसकर बाँध दिया ताकि पीछा करने वाले को खून के धब्बे का संकेत न मिल पाए। खून अब तक काफी

निकल चुका था। बाँध देने से एकदम रुक गया। नीरद को यह सब करने में दो मिनट से अधिक नहीं लगे। जल्दी से उसने कजरी को गोद मे उठाया और अन्धा-धुन्ध भागने लगा...

नीरद और कजरी के जाते ही नलिनी प्रसव-पीड़ा से बेचैन हो उठी। पीड़ा का शमन करने में उसकी अपूर्व आत्मशक्ति का भी दिवाला पिट चुका था। जीवन में उसके लिए यह पहला ही मौका था। घर में दादा को छोड़कर और कोई दूसरा प्राणी नहीं। दरी पर पड़ी वह मछली की तरह तड़प रही थी। भरी-भरी आँखों से पास ही बैठे दादा चुपचाप उसके पेट पर हाथ फेरने के सिवा और कर भी क्या सकते थे?

"उफ्! ऐसा लग रहा है जैसे..." और आगे के शब्द मुँह से अनवरत निकलती आह में डूब गए।

दादा की आँखों से दो बूँद लुढ़ककर उसके कपोल पर बिखर गए। दाँत पर दाँत रखकर नलिनी ने अपने को कुछ संयत किया—"उफ्! तुम रो रहे हो!....यह मैं क्या देख रही हूँ प्रिय!..."

दादा सचमुच फफक-फफककर रो पड़े थे।

"बेकार की बातें...देखो, कम्बल को लपेटकर उसी के सहारे, मुझे बिठा दो....घबराने से काम थोड़े ही चलेगा...इस तरह बैठने से शायद कुछ आराम....आह...."

दादा के काँपते हाथों ने सब कुछ कर दिया।

गोलियों की बौछार में अचल-अडिग रहनेवाले दादा को कुछ समझ नहीं पड़ रहा था कि आखिर वे इतना विह्वल क्यों हो उठे हैं!... साहस में उनसे भी दो-चार हाथ आगे रहनेवाली नीलू कभी शारीरिक पीड़ा से विह्वल हो जायेगी...और इतनी दूर तक कि उनको भी रो उठने को बाध्य हो उठना पड़े—कभी स्वप्न में भी कल्पना नहीं हो सकती थी

...मगर हो क्या रहा है—नीलू पीड़ा से विह्वल तड़प रही थी और उनकी आँखों से आँसुओं की झड़ी लगी हुई थी—जिसे कभी स्वप्न में भी नहीं देख पा सकते थे, वही सामने आ पड़ा था....

"सुनते हो !"

"नीलू...."

"अगर कुछ देर ऐसा ही रहा तो मैं निस्सन्देह मर जाऊँगी....अड़ोस-पड़ोस से किसी को बुला लाओ....आह..."

"पर तुम अकेली...क्या जाने..."

"मैं अपने को सम्हाले रहूँगी, तुम जाओ..."

दादा को तो जैसे पंख लग गए, उसी तरह से लुङ्गी और गंजी पहने भागे।

उफ् !

कौन-सी आफत में ला पटका उन्होंने नीलू को !—विक्षिप्त-सा हुआ मस्तिष्क, अपने आपको दोष देने लगा—मानस के तन्तु-तन्तु को उन्होंने अपने प्रति धिक्कार की भावना उगलते पाया....अन्धेरे में कई जगह ठोकर लगी, गिरते-गिरते बचे।

बगल में एक बनर्जी-परिवार रहता था। पति-पत्नी और एक नन्हाँ-सा शिशु। तरुण थे, देखने पर नमस्कार भर हो जाता था। वैसे वर्षों हो रहे थे इस मुहल्ले में; मगर न तो किसी ने दादा से अधिक परिचय करने की आवश्यकता समझी और न तो उनको इस ओर कोई दिलचस्पी हुई। मुहल्ला उन लोगों का था, जिनको अपने कमाने-खाने की दुनिया के बाहर क्या कुछ कैसे हो रहा है !—इसे देखने-समझने की फ़ुरसत ही नहीं मिल पाती थी।

और उनकी यह भावना आवश्यक भी तो थी।

अन्धेरा इतना था कि हाथ भी नहीं दीख रहा था अपना, टार्च के सहारे चलते हुए उन्होंने सोचा—इतनी रात को उन्हें बुलाना क्या उचित

होगा ?—कभी-कभी का नमस्कार, क्या अपनी पत्नी को एक सर्वथा अपरिचित घर में जाने देने को सहमत करा पायेगा ?—संभवतः नहीं, सोचा उन्होंने—पैर बुरी तरह लड़खड़ाए। सामने ही बनर्जी बाबू का दरवाजा था। हिम्मत ने जवाब देने की ठानी मगर परिस्थिति की विकटता ने लपककर उसे सम्हाला और तब वे जंजीर खटखटा रहे थे...

"कौन ?" बनर्जी की पत्नी थीं शायद।

"जी, मैं..." आप ही निकल गया उनके मुँह से। सतर्क कानों ने बताया—अन्दर उठाने-जगाने की खटर-पटर हो रही थी।

थोड़ी देर में ऊपर की खिड़की खुली और बनर्जी बाबू का निद्रालु स्वर आया—"कौन है भाई ?"

"जी, मैं हूँ, कुछ काम है...जरा नीचे आइए..."

"आप...इस समय...रुकिए जरा..."

दादा ने संतोष की साँस ली—खैर, उन्होंने पहचान तो लिया! मन की बेचैनी को हलकी-सी राहत मिल गई।

लगभग दस मिनिट में बनर्जी ने दरवाजा खोला, पीछे-पीछे हाथ में लालटेन लिए उनका नौकर सतर्कभाव से खड़ा था।

"कहिए !"

"जी..."

"बहुत परेशान मालूम पड़ते हैं, बात क्या है ?" उन्हें एकदम 'नर्वस' हुआ देख, उनके मन में किंचित सहानुभूति जाग उठी।

"देखिए...मेरी पत्नी को बहुत पीड़ा हो रही है..."

उनके अटपटे स्वर का मतलब वे सहसा समझ नहीं सके—पत्नी की पीड़ा में उनकी आवश्यकता ?—सहसा कुछ समझ में नहीं आया।

"बात यह है, उन्हें प्रसव-पीड़ा...हालत ठीक नहीं..." दादा ने बड़े प्रयत्न से सँजोए धैर्य का सम्बल पाकर स्थिति 'स्पष्ट' करने की कोशिश की।

सुनते ही वे काफी सदय हो गए—"और घर में शायद कोई..."

"जी नहीं..." दादा के मुँह से जल्दी से निकल गया।

"अच्छा !" वे क्षण भर के लिए हिचकिचाए मगर फिर—"अरे सुनन्दा, जरा नीचे तो आना..." बुला उठे।

दादा की जान में जान आई।

सुनन्दा को आने में चार-पाँच मिनट से अधिक नहीं लग पाए। दादा को चिन्ता थी कहीं वह...पर सुनन्दा पति से अधिक दयालु निकली।

तुरत चलने को प्रस्तुत हो गई।

नौकर पर बच्चे की देख-भाल का भार छोड़, बनर्जी-दम्पति दादा के साथ हो रहे।

रास्ते में दादा का मन जाने कैसा-कैसा होता रहा।

दरवाजे के पास पहुँचते ही नलिनी की एक लम्बी चीख के साथ ही किसी नवजात के किलकने की ध्वनि सुन पड़ी। दादा का हृदय जोरों से धड़क उठा।

"डिलेवरी हो गई शायद...." बनर्जी फुसफुसाए। उनकी पत्नी लपकती हुई अन्दर चली गई। दादा किसी प्रकार अपने को जब्त किए उनके पास खड़े रहे।

तभी ऊपर से आवाज आई—"हालत ठीक नहीं, जल्दी करिए..." दादा पागल की भाँति भागे, पीछे-पीछे बनर्जी साहब थे।

कमरे की झलक देखते ही दादा का मस्तक घूम उठा—फर्श पर खून की नदी-सी बह चली थी। नलिनी चेतनाहीन थी, उसके पास ही माँस का एक लाल-लाल लोथड़ा-सा पड़ा था। बेचारी सुनन्दा ने नलिनी के अस्त-व्यस्त हुए कपड़ों को ठीककर दिया था—"पीड़ा से शायद बेहोशी आ गई है....इस समय ऐसे ही रहने दें, सुबह किसी डाक्टर को दिखा देंगे...बच्चा तो..." कहते ही कहते वह बाहर हो रहीं। विमूढ़-से बने दादा वहीं खड़े रह गये।

"मैं तो चला भाई, सुबह कोई आवश्यकता हो तो तैयार मिलूँगा" दादा ने सुना और सोचा शायद वे जा रहे हैं, उनकी पत्नी रहेगी, परन्तु जब देर तक कोई आहट नहीं मिली तो घबराकर बाहर झाँका—कोई नहीं था। दोनों चले गए थे।

मलाल नहीं हुआ, रचिक भी। वे थे ही कौन !—इतना ही कर दिया...बहुत। डरती-सहमती निगाह मुड़ी—लहू के बिस्तर पर पड़ी नलिनी ने बेतरह झकझोर दिया। दौड़कर वे उसके निश्चेष्ट शरीर से लिपट गए नलिनी में जीवन के कोई आसार नहीं नजर आ रहे थे। न चाहकर भी रुलाई आ रही थी। जाने कितने दिनों से वे रोना किसको कहते हैं—भूल चुके थे; मगर आज जब वह अनायास ही याद आ गया तो सब कुछ खँडहर बनकर रह गया। आँसुओं में तैरती निगाह एक बार उस माँस के लोथड़े की ओर भी मुड़ी परन्तु तुरन्त रोमांच का एक धक्का लगा और बिजली की-सी गति से सम्हल गए। जाने किस ओर खिसक गये अन्तर के 'क्रान्तिकारी' ने आँधी में पड़े सूखे पत्ते जैसे हृदय को अपनी लौह भुजाओं में समेट लिया। उनका उद्भ्रान्त मस्तिष्क अब तेजी से काम करने लगा था। नलिनी बेहोश भर थी, साँसों की गति काफी मन्द अवश्य पड़ गई थी। जल्दी से पानी का छींटा देने लगे उसके मुँह पर। उनकी मुद्रा एकदम गंभीर हो उठी थी।

कुछ ही देर बाद नलिनी के मुँह से धीमी-सी कराह निकली।

दादा ने सन्तोष की साँस लेकर, धीरे से उसका सर अपनी जाँघों पर रख लिया। मन करुणा-ममत्व के ज्वार में मथा जा रहा था पर चेहरे पर आन्तरिक-हलचलों की शिकन नहीं थी।

"आह...तुम...तुम कहाँ...हो...मेरा बच्चा...आह...पानी..."

दादा ने जल्दी से पानी का गिलास उसके होठों से लगा दिया।

दो-चार घूँट पानी हलक के नीचे उतरने के बाद ही नलिनी पूर्णतया आपे में आ गई।

"नीलू !"

"मेरा बच्चा..."

"तुम अपने को सम्हालो नीलू...बच्चा....अब तुम्हारा बच्चा नहीं रहा..." दादा के स्वर में कम्पन नहीं था पर मन तूफ़ान में पड़े सागर-सा आन्दोलित हो उठा था।

"नहीं रहा..."

"हाँ, नीलू..."

उसी समय नीचे से दरवाजे के धड़ाक से खुलने की आवाज़ ने दादा को चौंकाया, वहीं से पूछ उठे—"कौन ?"

"दादा...." किसी का घुटता हुआ-सा स्वर और लड़खड़ा कर गिरने का आभास पाकर दादा के साथ ही नलिनी भी घबरा उठी—"कौन है...क्या है..." उसके मुँह से निकल गया।

"दादा...दादा..."

"कौन, नीरद तुम...क्या बात...." अपने सामने गोद में बेहोश कजरी को सम्हाले अस्त-व्यस्त-से नीरद को खड़ा पा, दादा एक झटके के साथ उठकर खड़े हो गए—"ओह, कजरी....घायल...तुम...कैसे..."

"दादा...पुलिस को सब कुछ मालूम हो चुका है....बहुत जल्दी...पर भाभी....यह..." नलिनी की हालत देखते ही वह सहम उठा।

नलिनी धीरे से उठकर बैठ गई।

दादा गांभीर्य में डूबे टहलने लगे थे।

"नीरद !"

"भाभी.."

"सम्हालो अपने को !" तड़प उठी वह, स्वर लड़खड़ाता हुआ भी काफी वजन लिए था—"लिटा दो इसे...और सब कुछ थोड़े में बता जाओ...अभी...फौरन..." और उसने मांस के बेजान लोथड़े पर पास ही पड़ा तौलिया डाल दिया। अपने लहू-लुहान शरीर की ओर

बिल्कुल ध्यान नहीं था, पीड़ा से पीला हुआ चेहरा कर्मठता की ज्वाला से ज्वलन्त हो उठा।

दादा विस्फारित नेत्रों से उसकी ओर निहार रहे थे।

नीरद ने चुपचाप कजरी को फर्श पर लिटा दिया।

तभी दादा के मुँह से चीत्कार निकल गया—"नीलू...सावधान... पुलिस..." और जल्दी से वे दरवाजे की ओर लपके, दोनों हाथों में रिवाल्वर थे। नीरद और नलिनी क्षणभर स्तब्ध बने रहे मगर जब सीढ़ी पर से रिवाल्वर और रायफलों की 'धाँय-धाँय' अनवरत रूप से होने लगी तो एक झटके के साथ नलिनी उठकर खड़ी हो गई। नीरद ने उसकी ओर देखा—"भाभी!"

"तुम्हारा रिवाल्वर..."

"ठीक है भाभी..."

दादा सीढ़ी के ऊपर से ही ऊपर आने के प्रयत्न में लगे पुलिस के जवानों को गोलियों के घाट उतार रहे थे।

चार बजे भिनसारे में झपकियाँ ले रहा मुहल्ला गोलियों की धाँय-धाँय और घायलों की 'हाय-हाय' से गूँज हो उठा।

उस साधारण-से मुहल्ले के लिए यह भयानक-सी आफत सर्वथा नवीन थी, इसलिए डर के मारे किसी घर का दरवाजा क्या, खिड़कियाँ तक नहीं खुल सकीं।

सीढ़ी कुछ इस ढंग की बनी थी कि पुलिस की ओर की रायफलें एकदम निकम्मी सिद्ध हो रही थीं। सीढ़ी के ऊपर गर्दन ऊपर करने वालों की खोपड़ी दादा की गोलियों की सधी हुई चपेट चूर-चूर करके रख देती थी। हाथ में रिवाल्वर ताने नीरद भी दादा के पीछे आ रहा।

नलिनी में अजीब-सी स्फूर्ति आ गई थी। कुछ देर पहले की मरणासन्न नीलू, मशीन की भाँति इधर-उधर-कोने-अतरे से सामान बटोरने में लग गई। एक बार खिड़की से झाँक कर देखा, सारा मुहल्ला

लाल पगड़ियों तथा जीपों से लबालब भरा हुआ था। उसके अनुभवी मस्तिष्क में सहसा कौंध गया—सीढ़ी की राह ऊपर चढ़ने में असमर्थ होकर दूसरा रास्ता भी अख्तियार किया जा सकता है। चारों ओर सरसरी निगाह डाली—लगभग सभी आवश्यक सामान एक गट्ठर में इकठा हो चुका था। निगाह तौलिये से ढँके माँस पिंड पर आकर थमी, हृदय में हाहाकार की लहर दौड़ी मगर दूसरे ही क्षण वह सम्हल चुकी थी। काँपते हाथों ने लोथड़े को ढँके ही ढँके आँचल में समेट कर कमर से बाँध लिया।

दादा की गोलियों की आवाज अब थम-थम कर आ रही थी।

"नीरद !"

नीरद दौड़ा-दौडा आया—"भाभी !"

"देखो, अब शायद पुलिस अगल-बगल के मकानों से अन्दर आने की चेष्टा करने वाली है..." और उसने इशारे से कोने के टाँड़ पर रखे मिट्टी के एक मैले-से बर्तन की ओर बताया। पलक झपकते ही नीरद ने सब कुछ समझ लिया। उसमें कई भयानक बम रखे हुए थे। नलिनी ने आगे बढ़कर खिड़की खोल दी और नीरद ने झपट कर बर्तन को सम्हाल कर अपने हाथों में उठा लिया। नलिनी ने तड़पकर कहा—"देखो, होशियारी से...मकान की दीवारों के पास नहीं...पुलिस वालों के बीच में..." और तभी एक भयानक दन्नाटे के साथ मिट्टी का वह बर्तन पुलिस वालों के बीच में गिरा। सारा मुहल्ला भूकम्प की तरह एकबार हिचकोला खा उठा। नीचे पुलिस वालों के बीच हाहाकार मच गया। नीरद और नलिनी पुराने मकान के कम्पन के धक्के से गिरते-गिरते बचे। दादा दौड़ते हुए आए—"नीलू..." वे भी इस आकस्मिक विस्फोट से घबरा उठे थे।

"कुछ नहीं, ठीक है..." कह कर वह नीरद की ओर घूमी—"नीरद, तुम कजरी को उठा लो...." और झुक कर उसकी नाड़ी पकड़ ली—

"शायद बच सके...और तुम..." दादा ने कहने के पूर्व ही सामानों की गठरी उठा ली थी।

नलिनी का मस्तक घूम उठा। दादा ने लपककर उसे सम्हाला।

विस्फोट से पुलिस वाले कुछ देर के लिए स्तब्ध-से हो उठे थे। आस-पास के लगभग सभी घायल हो गये थे, मरने वालों की संख्या भी कम नहीं थी एक जीप पर मशीनगन रखी थी। बर्तन उसी पर गिरा था। जीप के साथ ही मशीनगन भी चूर-चूर होकर रह गई। पास ही का एक जर्जर मकान, विस्फोट के धक्के से ढह गया था, उसके मलवे के नीचे जाने कितने दब-पीसकर रह गए थे। और इन सब गड़बड़ियों ने दादा को निकल भागने में बहुत सहायता पहुँचाई। अत्यधिक दुर्बलता के कारण नीलू को गश आ गया था। पीछे की दीवार विस्फोट से लगभग ध्वस्त हो चुकी थी, पहले ही से जर्जर रहने के कारण। नीरद ने कजरी को हाथों के सहारे गोद में उठा लिया और दादा एक हाथ से नलिनी को सम्हाले तथा दूसरे में रिवाल्वर लिए दीवार लाँघकर बाहर हो रहे।

पुलिस को सम्हलने में बहुत-सा समय लग गया और जब से नए दस्ते के साथ वह अन्दर घुसी तो खाली मकान उसकी मूर्खता की खिल्ली उड़ाता प्रतीत हुआ। आक्रमण में स्वयं पुलिस-कप्तान सम्मिलित थे पर वे विस्फोट में पहले घायल हो चुके थे, बुरी तरह से।

झुटपुटा फटने लगा था। दिवाकर की स्वर्ण-किरणें आकाश के पूर्वी छोर से मुस्कराने लगी थीं। देखते ही देखते महानगरी में सनसनी व्याप्त हो गई। सारे शहर में सैनिक-शासन स्थापित हो गया। सी० आई० डी० विभाग पीछा करने के लिए दौड़ पड़ा।

अफवाह का दौरदौरा था—इस संघर्ष मे पचासों क्रान्तिकारियों ने हिस्सा लिया होगा! पुलिसवालों ने अपने ही ओर की लाशों को क्रान्तिकारी करार दिया था। रहस्य से अनभिज्ञ जनता ने उन नौकर-

शाही कुत्तों की मौत को शहादत के रूप में ग्रहण किया और यही क्या उन अभागों के लिए कम था ?

नौकरशाही-सत्ता के इतिहास मे शायद पहली बार क्रान्तिकारियों से संघर्ष में पुलिस को इतनी करारी हार मिली थी...

भारत माँ के सूखे होठों पर मुस्कान थिरक उठी। वन्दिनी काया की जंजीरें झनझना उठीं...

● ●

कलकत्ता आने के बाद, रामबाबू का सारा जीवन-क्रम भयानक रूप से हलचलमय हो उठा था। दल के एक सदस्य के साथ छिपकर रहते हुए अब भी कम नहीं आ रही थी। वहाँ से लौटने पर दादा से तीन-चार बार ही भेंट हो पाई थी। सरकार की सतर्क दृष्टि से परेशान दादा को उनके कार्य-क्रम के विषय में कुछ सोचने का मौका ही नहीं मिल पाया। घर की चिन्ता ऊपर से खाए जा रही थी। कभी-कभी अपने आप पर झुँझला भी पड़ते कि नाहक ही इन झंझटों में फँस गए। क्रान्ति की लपट से, 'गाँधीवाद' की शीतलता में पगा उनका हृदय, पश्चात्ताप के उद्वेलन से अस्थिर हो उठा। कुछ दिन पूर्व एकबार कलकत्ता में उनकी भेंट दादा से हुई थी। सौभाग्य से दादा और उनका बहुत पुराना परिचय निकल आया—कॉलेज के दिनों का। 'गाँधीवाद' नया-नया ही उदित हुआ था। स्वदेश-प्रेमियों के मन में उसके प्रति शंका-सी थी, वे भी उसके शिकार थे और तभी दादा के प्रज्वलन्त विचारों ने उस शंका को काफ़ी आगे तक बढ़ा देने में सफलता प्राप्त कर ली। उनका अहिंसावादी हृदय, उस समय तो दादा के विचारों से काफ़ी दूर तक प्रभावित हुआ मगर वहाँ से लौटने

पर, जब गांधीजी ने असहयोग की आग भड़काई तो मन की शंका जाने कहाँ पलायित हो उठी और वे असहयोग की शीतल-ज्वाला में तपने के लिए तत्पर हो उठे ! घर के काफ़ी अच्छे-खासे थे। परिवार भी छोटा नहीं था। शादी हुए कुछ ही दिन हुए थे। कुछ दिनों से अपनी पत्नी छाया के साथ बनारस से इलाहाबाद रहने लगे थे।

यहाँ पर एक अँग्रेजी कम्पनी के माल की एजेंसी लेना चाहते थे। बात-चीत हो ही रही थी कि असहयोग के चक्कर में जेल की चहारदीवारियों के बीच ठूँस दिए गए। क्रान्ति आन्दोलन स्थगति-सा हो गया था इसलिए उस सम्बन्ध में कुछ सोचने-समझने का अवसर ही नहीं प्राप्त हो सका। जेल के अनुकूल वातावरण ने 'गाँधीवाद' की नींव को और भी दृढ़ बनाने में सहायता पहुँचाई।

अचानक ही, बंगाल से भटकते हुए दादा ने उनसे छद्मवेश में जेल के अन्दर मुलाक़ात की। दादा को इलाहाबाद में अपने कार्य के लिए उनके सहयोग की आवश्यकता थी। वे पुनः बह उठे। कुछ ही प्रयत्न में जेल से भगा देने वाली बात पर उन्होंने अपनी सहमति प्रकट कर दी। उन्हें कभी विश्वास नहीं था कि 'दादा' ऐसा करने में कभी सफल हो पायेंगे। परन्तु एक रात जब दादा ने अपने पाँच साथियों के साथ, जेल पर सफलता के साथ आक्रमण किया तो उनको क्रान्तिकारियों की शक्ति की गुरुता का विश्वास करना ही पड़ा। 'गाँधीवाद' धुल-पुछ कर रह गया।

कोठरी में बैठे-बैठे सोचते रहे रामबाबू।

छाया !

छाया कैसे और कहाँ होगी !—इसकी चिन्ता अवश्य थी; मगर जब से पता लगा कि इलाहाबाद से उनके पिताजी उसे बनारस लिवा ले गए, तब से उसकी ओर से काफ़ी निश्चिन्तता मिल गई है।

परन्तु उनका अपना भावी-जीवन !—

बिल्कुल अन्धकारपूर्ण !

अनिश्चित, अनजान पथपर वे अपने आप को एकदम अकेला पा रहे थे। कुछ समझ में नहीं आ रहा था क्या करें !...बचपन से अब तक राजसी-ठाट से रहे और यह जीवन...सोचकर रोमांच हो आया उन्हें।

दिन रात मिलाकर एक बार भोजन का डौल हो पाता है कहीं, सो भी ऐसा, जिसे देखकर भूख की नानी मर जाय।

कभी-कभी इस 'एकबार वाले क्रम' मे भी कटौती हो जाती है।

जिसके यहाँ रह रहे थे, वह काफी उदार था। उनकी असुविधाओं को समझते हुए भी बेचारा कुछ कर नहीं पाता था। कभ-कभी उनकी अशान्ति देखकर उसे क्षोभ भी कम नहीं होता था उन पर। बिगड़ उठता—"जब इतना ही सब सहन नहीं हो पाता आपसे तो और क्या हो सकेगा !....आप तो नाहक ही इस जीवन में आए राम बाबू !.... क्रान्ति का मार्ग गाँधीजी के आन्दोलनों की तरह सहज नहीं, इसको साध्य बनाने के लिए साधना की जरूरत हुआ करती है और वैसी साधना आप जैसों के बूते के बाहर की चीज़ है..."

सुन कर वे और भी निराश हो उठते।

उन्हें लगता, यह उनकी परीक्षा ली जा रही है, जिसमें सफलता पा लेना उनके लिए असंभव है।

गाँधीवादी-मार्ग उन्हें स्वर्ण की भाँति लगने लगा, जब कि यह मार्ग लोहे से भी अधिक 'गया-बीता' महसूस होने लगा था।

क्या करें !

लौट जाँय !

पर अब वह मार्ग भी तो खतरे से खाली नहीं रहा।

सरकार ऐसे ही थोड़े छोड़ देगी उन्हें !

उनके लिए एक जगह बैठे रहना असंभव-सा प्रतीत होने लगा था। इन्हीं सबके सम्बन्ध में वे एक बार दादा से मिल लेना आवश्यक समझ

ै थे परन्तु बहुत चाह कर भी उनको इच्छा फलीभूत होती नहीं प्रतीत ाती थी।

सहसा वे उठ पड़े।

आज कुछ न कुछ निर्णय हो ही जाना चाहिये—

इसका दृढ़ निश्चय कर चुके थे।

साथ रहने वाला रात का गया-गया अभी वापस आया है, यह न्होंने अपनी कोठरी में से ही देख लिया था।

लपकते हुए पहुँच गये। वह बहुत घबराया लग रहा था।

"भाई!" बड़ी मुश्किल से निकल सका उनके मुँह से।

उसने जैसे कुछ सुना ही नहीं, कपड़ा उतारने में लगा रहा।

राम बाबू अन्दर उसके पास आकर खड़े हो गये—"मैं अब बहुत ्बरा उठा हूँ, क्या आज दादा से भेंट नहीं हो सकेगी?" बड़ी ही ाजिजी से पूछ उठे।

उसने कोई जवाब नहीं दिया।

चुपचाप उस दिन का अखबार झोले से निकाल कर उनके सामने ंक दिया और जल्दी से लोटा उठा कर नल की ओर बढ़ गया।

राम बाबू की आँखें फट-सी पड़ीं।

मुखपृष्ठ पर ही मोटे-मोटे हरफों में छपा था - पुलिस और क्रांतिकारी ल के बीच जमकर मुठभेड़!—पचीसों हताहत....संघर्ष में क्रांतिदल ारा बमों का भी प्रयोग...विश्वास किया जाता है, क्रांति-दल वाले ाफी तायदाद में थे—संघर्ष में सबके सब या तो मारे गए या अत्यन्त ायलावस्था में ही किसी तरह भागने में समर्थ हो पाए...नगर के ुछ हिस्सों में सैनिक-शासन!...पुलिस के साथ सेना भी पीछा करने में ागी है!

यह सब कुछ राम बाबू ने एक ही साँस में पढ़ डाला।

हृदय में एकबारगी ही कम्पन भर उठा।

साथी वापस आ गया था। अब भी उसकी मुद्रा पर असाधारण रूप से गंभीरता जमी हुई थी। राम बाबू को साहस नहीं हुआ सहसा कि उससे कुछ पूछ सकें!—हक्के-बक्के-से उसकी ओर निहारते भर रहे।

"राम बाबू!"

"......"

"समाचार देख लिया न?"

"हाँ....पर..."

"पर-वर का अब मौका नहीं रहा...दादा इस समय संकट में पड़ गए हैं और जहाँ तक मेरा अनुमान है वे इस समय कलकत्ता में हैं भी नहीं...हमारा अब यहाँ रह सकना असंभव-सा हो उठा है...कई साथी पुलिस के हाथों पड़ चुके हैं और जाने कब कौन क्या कर बैठे... इसलिए आज रात बीतने के पहले ही हमें यह मकान अवश्य ही छोड़ देना होगा....आप समझ रहे हैं तो मेरी बात!" कहकर वह पुनः जल्दी-जल्दी कपड़ा पहनने में लग गया।

राम बाबू भौंचक्के-से खड़े रहे।

मौन में घुलते हुए सहसा ही उनके मुँह से निकल गया—"यह सब क्या कह रहे हो...कुछ समझ में नहीं आता..."

"समझने की कोशिश कर देखिए राम बाबू!"

"मगर...."

"ठीक है, सोचिएगा...मैं दो-तीन घंटे में आऊँगा..."

और बगैर वह उनकी किसी बात की प्रतीक्षा किए कोठरी के बाहर हो गया।

राम बाबू पर तो जैसे पहाड़ टूट गिरा।

मगर जब तीन घंटे बाद वह आया तो रामबाबू वहाँ न थे। देखकर उसे रत्तिक भी हैरानी नहीं हो पाई।

"ये गांधीवादी !..." उसके मुँह से इतना ही निकला और आवेश में पैर पटकता हुआ बाहर निकल गया।

कलकत्ता की चहक रही 'जिन्दादिली' टी० बी० के लास्ट स्टेज पर पहुँच गई थी....

* * * *

जैसे ही दीवार फाँदकर दादा के साथ नीरद ने बाहर सड़क पर पैर रखा, दादा का रिवाल्वर गरज उठा, सामने से लपककर आता हुआ सार्जेन्ट जमीन पर लोट गया। उसके हाथ का रिवाल्वर गरजने के पहले ही सड़क पर दूर जा गिरा, जिसे नीरद ने झुककर उठा लिया। नलिनी को सम्हाले दादा दौड़ने लगे—"नीरद...जल्दी...समय बिल्कुल नहीं है..." नीरद ने उनका साथ देने का यथासंभव प्रयत्न किया पर बेहोश कजरी को गोद में उठाए भागने में बड़ी परेशानी हो रही थी। दादा की चेतावनी रह-रहकर उसमें उत्साह की लहर लहराती जा रही थी। सबेरा होने के पहले ही किसी सुरक्षित स्थान पर पहुँच जाना, मामूली बात नहीं थी। कुछ ही दूर आगे बढ़ने पर नलिनी को भी दादा को गोद में उठा लेना पड़ा। दोनों भागते रहे। बस्ती से निकलकर गंगा के तट पर आने में मुश्किल से दो घंटे लगे होंगे। सबेरा हो गया था। घाट न होने के कारण किनारा प्रायः सुनसान था। मिट्टी के एक टीले की आड़ में आकर दादा के साथ ही नीरद भी गिर पड़ा। कुछ देर तक तो दोनों को होश ही नहीं रहा। दादा ने अपने को बहुत जल्दी प्रकृतिस्थ कर लिया। नीरद अब तक निढाल-सा पड़ा हुआ था। कजरी और नलिनी को लिटा दिया गया था।

"नीरद !"

"दादा..."

"यह स्थान भी निरापद नहीं, फिर कजरी की हालत... उफ़ ! क्या किया जाय..."

"दादा..." उनकी स्वस्थता ने नीरद को भी बहुत कुछ सम्हाल लिया—"आप किसी जगह चलकर पहले कजरी के जख्म की परीक्षा कर लें—फर्स्ट एड बक्स सामान में होगा....मेरा खयाल है, गोली अन्दर ही फँसी हुई है..." कहकर उसने धीरे से कजरी को हिलाया—"क्या कजरी अब..." एक लम्बे निश्वास के साथ उसके मुँह से फूट पड़ा। दादा की ओर वह बड़ी करुणा से निहारने लगा।

दादा ने झपटकर कजरी की नाड़ी पकड़ ली—"नहीं, पर किसी भी समय..."

"दादा..."

"परेशान होने से फायदा..." और उनकी निगाह अपने आप ही बगल में पड़ी नलिनी की ओर मुड़ गई; नीरद को अनुभव हुआ, जैसे दादा का स्वर बड़ी तेजी से काँप गया हो।

"नीरद !" एक झटके के साथ उठकर दादा ने नीरद के कंधे पर हाथ रख दिया—"सुनो, एक काम करो..."

नीरद उनकी ओर मूक भाव से निहारने लगा।

दादा सामने गंगा की ओर देखने लगे—"वैसे हम काफी चक्कर देते हुए आए हैं। किसी का अभी फिलहाल एक-दो घंटे पहुँच सकना संभव नहीं, पर यह मात्र भुलावा भी तो हो सकता है...यह सूरज..." और उन्होंने बड़ी बेचैनी से क्रमशः उठते हुए सूरज की ओर निगाह फिराई, जैसे अगर संभव होता तो निश्चय उनका रिवाल्वर उसे भून देने को गरज उठता। अपनी बेबसी पर वे क्षण भर पेचोताब खाते रहे, फिर सहसा ही नीरद की ओर मुड़कर बड़ी आतुरता से बोले—"जो कुछ भी हो, तुम्हें किसी तरह अभी जाकर कुछ साथियों को साथ लाना ही है...मैं तब तक यहाँ इनकी व्यवस्था करता हूँ—जाओ, जाओ !"

नीरद बखूबी समझ गया, इस समय वे विरोध में कुछ भी सुनने को तैयार नहीं। भरे-भरे मन से उठकर खड़ा हो गया। एकबार कजरी

और भाभी की ओर देखा और जल्दी से घूम पड़ा। आँखों से मोती लुढ़कने ही वाले थे। दादा सामानों की गठरी खोलने में लग गए थे। अपने काम में लगे ही लगे उन्होंने व्यस्त स्वर में कहा—"रास्ता तजबीज लिया है न ?"

"हाँ !" नीरद की आँखों से आँसू छलक आए थे, इतना भर कह कर वह आगे बढ़ गया; दादा ने उड़ती-उड़ती निगाह से देखा—उसके पैर बुरी तरह लड़खड़ा रहे थे। उनके मुँह से निकल गया—"पागल कहीं का..." और फिर अपने कार्य में दत्तचित्त हो रहे।

फस्ट एड बाक्स से सामान निकाल कर दादा कजरी के पास आ बैठे। जाँघ पर बँधी कमीज को धीरे से खोलकर अलग रख दिया उन्होंने, साड़ी खून के सूख जाने से माँस से चिमट गई थी, यत्न से उसे छुड़ाने लगे। घुटने के ऊपर आते ही उनके हाथ रुक गए। जाने कैसी हिचकिचाहट होने लगी थी मगर दूसरे ही क्षण उन्होंने अपने आपको दृढ़ बना लिया। आँखों में छन्न से शून्याकार छनक उठा—प्रदीप्त-सा होता हुआ।

पेंडु से कुछ नीचे हटकर रिवाल्वर की गोली ने गहरा जख्म बना दिया था।

हाथ काँपे, सम्हले, पुनः काँपे और पुनः सम्हले।

ध्यान से देखा, गोली न तो पार ही हुई थी और न अन्दर ही थी—सारे मास को उघेड़ती हुई हड्डी के पास तक पहुँचकर सवा इंच लम्बा-चौडा जख्म बनाती हुई निकल गयी थी। सधे हुए, अनुभवी हाथों ने जल्दी-जल्दी स्पिरिट से जख्म की सफाई की और दवा लगाकर पट्टी बाँध दी। खून से भीगी हुई साड़ी, दफ्ती की तरह कड़ी हो गई थी, उसे उतार कर अलग कर दिया उन्होंने, पेटीकोट भर रह गया।

इतना सब करने में उन्हें पन्द्रह मिनट लग गए।

फारिग होकर उन्होंने देखा, सारा बदन पसीने से भर उठा है—जाने क्यों ?

अब उनकी निगाह नलिनी की ओर मुड़ी।

नाड़ी अब पहले से काफ़ी गतिमान हो उठी थी।

उन्होंने सन्तोष की सांस ली।

और जल्दी से पानी लाकर उसके मुँह पर छींटा मारने का उपक्रम करने लगे।

कुछ ही देर में होश आने का आसार नजर आने लगा।

"आह..."

"नीलू..." उसके कराह की ध्वनि से वे विह्वल हो उठे।

नलिनी ने धीरे-धीरे आंखें खोल दीं और उसकी आत्मशक्ति ने अधिक देर तक पड़ी रहने न दिया दादा ने सहारा देकर उसे बिठा दिया

"आह...कैसे...क्या...हम कहाँ हैं ?..."

"सब ठीक है...तुम कैसी हो...."

उसकी निगाह अपने सामने पड़ी कजरी की ओर गई—"यह...और नीरद ?..."

"कजरी अभी बेहोश है...नीरद को मैंने काम से भेजा है...तुम थोड़ा पानी पी लो...तब तक मैं...."

"मैं अब बिल्कुल ठीक हूँ...लाओ पानी..." कहती हुई वह कजरी के पास खिसक आई और उसके मुँह पर पानी का छींटा मारने लगी। दादा आश्वस्त से होकर टहलने लगे। कुछ ही मिनटों में वह भी होश में आने को हो गई। पहले कुछ कुनमुनाई और तब पीड़ा की भयानकता से मुँह से चीख निकल गई। आँखें उसकी अब तक नहीं खुल पाई थीं।

अब उसका अपने शरीर की ओर ध्यान गया। आँचल में अब तक नवजात शिशु की लाश बँधी थी।

"नीलू..."

"......"

"यह सब क्या हो गया नीलू..." दादा पुनः विह्वल हो उठने को हुए; पर उसने आँखों से ही डाँट दिया—'सम्हलो, ऐसा नहीं करते..."

दादा ने मुँह पर दोनों हथेलियों का आवरण डाल लिया।

"तुम रुको ज़रा...मैं अभी आई..." कहकर उसने सामान से एक फुलपैंट निकाला और जल्दी से गंगा की ओर बढ़ गई। तटपर आकर आँचल से लाश निकाली, कुछ देर तक एकटक निहारती रही उसकी ओर और तब धीरे से उछाल दिया—वह क्षण भर पानी पर तिरता-सा रहा; फिर डूब गया या किसी जानवर ने अन्दर खींच लिया यह देख नहीं पाई—माँ का ममत्व जो उमड़ उठा था। फूटती हुई हिचकियों पर आत्म-शक्ति के 'दर्प' ने विजय पाई और तुरन्त वह गांभीर्य में सन गई।

जल्दी से खून में सनी साड़ी बदन से अलग कर, बदन की सफाई की और साथ लाया फुलपैंट पहन लिया।

जब वापस आई तो दादा दोनों घुटनों के बीच सर डाले बैठे थे—मूक।

कजरी रह, रहकर कराह उठती थी।

"भाभी।..." तभी नीरद ने लड़खड़ाते क़दमों से आकर पीछे से आवाज़ दी। नलिनी ने उसे पहले ही देख लिया था—"तुम आ गए!"

दादा ने भी चौंककर सर उठाया—"कुछ हुआ!" पूछ बैठे।

"नहीं दादा...मेरे कपड़े...और शहर में सैनिक शासन...संभव नहीं..." नीरद हताश-सा हो गया था—"कजरी..." कहता हुआ वह कजरी के ऊपर झुक गया।

"ठीक किया लौट आए...अच्छा!" कहकर दादा उठ पड़े।

"कहाँ!" नलिनी पूछ उठी।

"यहीं पास ही में मेरा परिचित एक केवट रहता है...देखूँ, शायद किसी नाव का इन्तजाम....यहाँ अधिक देर टिकना...."

"ठीक है, मगर देखो, कपड़ा लेते जाओ....बदल लेना और तुम भी नीरद..." और उसने गठरी से कपड़े निकाल कर दे दिये—"हाँ, कजरी की यह साड़ी उधर ही कहीं फेंकते आना...तब तक इसे मैं देखती हूँ..."

दादा और नीरद चले गये। नलिनी कजरी की ओर झुकी।

कजरी अब पूर्णतः होश में थी। धीरे से उसके होठों से पानी की बोतल लगा दी उसने। दो ही चार घूँट गले के नीचे पानी उतरने पर कजरी ने धीरे से आँखें खोल दीं।

"कजरी..."

"भाभी...तुम....आह..."

"कोई बात नहीं, सब ठीक हो जायेगा..." धीरे-धीरे उसके सर पर हाथ फेरती हुई वह उसे पीड़ा के आभास से दूर रखने की चेष्टा करने लगी।

पहले नीरद और कुछ देर बाद दादा आ गये।

"क्या हूआ ?"

"नाव तो मिल गई पर उस पर दो आदमी से अधिक की गुंजाइस नहीं....काफी छोटी है..." कहकर दादा वहीं बैठ गये।

"फिर ?"

"मैं सोच रहा हूँ, नीरद कजरी को लेकर चला जाय और हम बाद में सोचेंगे अपने लिए...सबका एक साथ रहना भी तो ठीक नहीं..."

"ठीक है, कहाँ है नाव ?"

"आ रहा है लेकर..."

"मगर आप लोग ?" नीरद कह उठा आशंकित-सा।

"चिन्ता मत करो...."

"नहीं दादा, यह..."

"नीरद !" नलिनी की डपट सुन कर वह चुप रह गया।

"भाभी...यह....नहीं...." स्थिति का भान होते ही कजरी भी बोली, क्षीण स्वर में प्रस्ताव का विरोध करती हुई।

"समय नहीं, चुप रह तू...नीरद !"

"भाभी !" नीरद रो उठा।

"पागल न बनो, वह देखो नाव आ गई..."

किसी को और कुछ कहने का साहस नहीं हो पाया।

कजरी को सम्हाल कर नाव पर लिटा दिया गया।

"दादा...भाभी...." नीरद बिलखता हुआ दोनों के पैरों पर झुक गया।

"पागल...." दादा और नलिनी दोनों ही विचलित हो उठे—"अच्छा हो, किसी तरह ढाका चले जाने की कोशिश करना....दल के सदस्यों से वहाँ काफ़ी सहायता मिलेगी....जीते रहे तो पुनः भेंट होगी..." दादा का स्वर काँप रहा था। नलिनी ने अपना बड़े यत्न से रखा नेकलेस निकाल कर नीरद के हाथों पर रख दिया—"तब तक काम चलाना..." कुछ रुपये नक़द थे, उसे भी नीरद को जबरदस्ती थमाकर दादा ने उसे खींच कर नाव में बिठा दिया।

कमजोरी से कजरी फिर मूर्छित हो गयी थी।

नाव चल पड़ी। बूढ़े माँझी की भी आँखें अश्रुपूर्ण हो उठीं...देश पर मर मिटने वाले उन साहसी तरुणों के बलिदान पर...

'बन्दे मातरम्' का क्रमः धीमा होता हुआ स्वर नीरद सुनता रहा और जब गंगा की लहरों के कलरव में वह खो गया तो विक्षिप्त-सा नाव पर गिर पड़ा। नाव तीर की-सी गति दौड़ पड़ी।

दादा नीलू के साथ भारी कदमों से लौट आए उसी स्थान पर। नलिनी होठों के भीतर ही बंकिम की लाइनें—बन्दे मातरम...गुनगुनाए जा रही थी। दादा गांभीर्य में डूबे कुछ सोच रहे थे।

"क्या सोच रहे हो !"

"कुछ नहीं नीलू..." दादा को एक झटका लगा—"बहुत कुछ.... बहुत कुछ...सोच रहा हूँ, हमारी भी जिन्दगी क्या रही, क्या है...तुम्हें अपने पहले वाले जीवन की कुछ याद है नीलू ?...जब हम दोनों में परिचय हुआ था और वह परिचय—हाँ नीलू, हमारा परिचय भी क्या हुआ था—एकदम आकस्मिक, एक दम..." कहते-कहते वे रुक गये, जैसे विद्युत से चलती मशीन एकबारगी ही, बिजली फेल हो जाने से रुक गई हो। उनकी आँखें अपने आप ही ढँप चलीं। धीरे से नलिनी की फैली हुई जाँघों पर सर रखकर वे लेट गए। नलिनी विगलित-सी मूक बैठी रही। उसकी उँगलियाँ अपने आप ही दादा के बालों में उलझ गईं।

दादा के मन-मस्तिष्क का तार-तार स्मृतियों के मिज़राबी-चुम्बन से झंकृत हो रहा था। वे सब कुछ भूल गए थे—बस, वे थे और थी स्मृतियों की झनकार, झनकार से छूटती कसक की पिचकारियाँ....और कुछ नहीं। वातावरण पर भयावह बोझिलता थिरक उठी।

बारह साल। हाँ, बारह साल ही हुए, जब अमूल्य मात्र बीस साल का युवा था। यूनिवर्सिटी में साइन्स का मेधावी विद्यार्थी। माता-पिता नहीं थे, उनका साथ कभी का छूट चुका था मगर अपना साया उठाते समय बालक अमूल्य के लिए एक अच्छी-खासी जमींदारी का सम्बल देना वह नहीं भूले थे। रिश्ते के एक चाचा के सर पर सब कुछ छोड़कर अमूल्य पूर्वी बंगाल के अपने गाँव से कलकत्ता चला आया। दिन बीतते गए। उसकी अनुपस्थिति में चाचा ने जमींदारी के साथ खुलकर 'जशन' मनाया और एक दिन उसने धड़कते हृदय से सुना—सारी जमींदारी नीलाम हो गई है। छल-छन्दों से सर्वथा परे उसकी समझ में यह नहीं आया कि जमींदारी का सम्पूर्ण अधिकार कब, कैसे और क्यों चाचा के हाथों उसने बेच दिया। कुछ दिन परेशान रहा मगर फिर सब पहले की भाँति चलने लगा, अन्तर केवल इतना ही था—पहले खर्च के लिए

हर मास एक निश्चित रकम योंही मिल जाती थी और अब पढ़ाई-लिखाई के साथ ही खर्च का भी बोझ उसको ही सम्हालना पड़ता था। सौभाग्य से उसे कुछ अच्छे ट्यूशन मिल गए। मित्रों शुभचिन्तकों ने अधिकार के लिए लड़ने को भड़काया मगर उसने इस ओर कभी ध्यान ही नहीं दिया। वैभव से उसे बहुत पहले ही विराग था। कलकत्ता में रहते हुए उसको कुछ पुराने क्रांतिकारी नेताओं के सम्पर्क में आने का मौका मिला। देश का वातावरण काफी गर्म था। नौकरशाही सत्ता के लिए बंगाल जीवन-मरण की समस्या बना हुआ था। फाँसी और सजाओं का दौर जितना ही लम्बा डग मारता, जीवन-मरण की समस्या उतनी ही गंभीर रूप धारण करने लगती। बम-केस के अपराधी के रूप में अमूल्य इधर-उधर भटक रहा था कि सहसा नोवाखाली के एक गाँव में अजीब घटना का शिकार हो उठना पड़ा। साथ में दल के कुछ और साथी भी थे। उनकी और अपनी भूख के लिए एक रात उसे एक जमीन्दार की हवेली में पैठना पड़ा। खिड़की के रास्ते से वह जिस कमरे में कूदा था, वह जमींदार की पालिता लड़की नलिनी का कमरा था। उसके कूदते ही किसी ने लालटेन जला दी और तब उसने सहमी आँखों से देखा—सामने पलंग पर उठकर बैठी हुई एक तरुणी उसकी ओर घूर घूरकर देख रही है। सहम अधिक देर तक नहीं रही, शीघ्र ही अपने को सम्हाल कर उसने अपने हाथ की पिस्तौल सीधी कर दी—"खबरदार, चुपचाप जहाँ की तहाँ बैठी रहो वर्ना...."

"वर्ना गोली मार दोगे—वाह! आए हो चोरी करने और शान लगाते हो क्रान्तिकारियों की तरह..." और वह बिना उसके पिस्तौल की कुछ परवाह किये, पलंग से उतरकर उसके सामने आ रही। उसके साहस पर वह दंग रह गया। इतनी निर्भीकता अपने जीवन में उसने एक नारी में कभी नहीं देखी थी। स्तब्ध-सा खड़ा रह गया।

"पढ़े-लिखे मालूम पड़ते हो जी तुम तो?..."

"ख़ामोश..."

"चुप रहो...क्रान्तिकारी मालूम पड़ते हो !..."

वह पेचोताब खा उठा ।

कुछ समझ नहीं पाया कि आख़िर उसे हो क्या गया है !

मिनटों स्तब्धता में लद चले ।

दोनों एक दूसरे को घूर रहे थे ।

"पैसे के लिए आए हो !"

वह सहसा ही घबरा उठा ।

"बोलते क्यों नहीं जी !"

वह फिर भी मौन रहा ।

"नहीं बोलोगे !"

"ख़ामोश !"

"वाह जी, डाँटने में तो..."

"चुप..."

तभी उसने अजीब फुर्ती से उसके हाथ से पिस्तौल छीन ली । वह हक्का-बक्का-सा रह गया ।

"अब मेरी बारी है !" कहकर वह मुस्करा पड़ी—"क्या इरादा है !..." उसने उसकी ही पिस्तौल उसके सीने से भिड़ा दी ।

आवेग से वह काँप उठा ।

"छीनने का इरादा है !...मगर तुम्हारे में वह ताक़त नहीं..." और पिस्तौल से ही धक्का देकर उसने दो-तीन कदम पीछे हटा दिया उसे । फिर अपने आप ही उसने पिस्तौल उसकी जेब में रख दी ।

"अकेले हो !"

"नहीं !...."

"कहाँ टिके हो !"

उसके स्वर में जाने कैसी ताक़त थी कि उसने सब कुछ बता दिया ।

बाद में जब अपने आपे में आया तो इस मूर्खता पर पछताने लगा। सोचने लगा—अवश्य ही यह मरदूत लड़की कुछ जादू जानती है।

सम्मोहित सर्प की भाँति चुपचाप खड़ा रहा वह।

"कितने पैसे चाहिए?"

वह क्या बोले!

"समझ गई, अपनी हार पर शरम आ रही है...." कहकर उसने अपने तकिए के नीचे से निकालकर दस-दस के पाँच नोट उसकी ओर बढ़ा दिए। पर उसके हाथ आगे नहीं बढ़ सके। सचमुच आज की अपनी दुर्बलता पर उसे क्षोभ हो आया था। उसकी जेब में नोट ठूँसकर खिड़की की ओर इशारा करते हुए बोली—"अब जाओ....कल मिलूँगी...मिलोगे?"

वह चला आया।

साथियों से चाहकर भी अपनी 'वीर-गाथा' की चर्चा नहीं कर पाया। रात को नींद न आ सकी।

दिन भर उद्विग्न रहा।

जाने क्यों उसे विश्वास हो गया था कि उससे किसी बात का खतरा नहीं।

शाम को वह आई।

साथी कहीं और चले गए थे।

आते ही उसने पूछा—"अकेले हो?"

"हाँ!"

"क्यों! और..."

"नहीं।" जाने किस प्रेरणा के वशीभूत हो वह कहता चला जा रहा था। उस असाधारण व्यक्तित्व वाली युवती ने सचमुच उसे पराजय के गहरे गर्त्त में ढकेल दिया था, जिसमें से निकलना चाहकर भी नहीं निकल पा रहा था वह! सामर्थ्य ने मुँह मोड़ लिया था।

परिचय बढ़ता गया।

वह एक शहीद हो गए विख्यात क्रान्तिकारी की पुत्री थी। अनाथ हो जान पर अपने पिता के मित्र इन जमींदार साहब के यहाँ आ गई मगर उसके लहू में शहीद पिता की शहादत की आग धधकती ही रही। साथी सब चले गए–खतरा समझकर; मगर वह वहीं डटा रहा और एक दिन उसने सुना दल के प्रधान को गोरी-सत्ता ने फाँसी दे दी। दल छिन्न-भिन्न हो गया। दोनों एक दूसरे के काफ़ी निकट आते हुए भी मन में किसी 'वैसी' भावना को स्थान नहीं दे पाये थे। और 'वैसी' भावना कब, कैसे और कहाँ से आ गई ?—यह दोनों में से किसी को मालूम नहीं हो पाया !

अंग्रेज महायुद्ध के चक्कर में हत्‌बुद्धि-से हो गए थे।

मौका देख दोनों ने पार्टी को एकदम नए ढंग से संगठित करने का निश्चय किया और तब...

दादा सहसा ही चौंककर उठ बैठे।

दोपहर झुक आई थी।

नीलू बैठी-बैठी ही झपकियाँ लेने लगी थी।

"ओह !" दादा को लगा कि नीलू शैथिल्य से नहा उठी हो—"क्या तुम सो गए थे ?"

"नहीं नीलू..." दादा का सर चक्कर खा रहा था। स्मृतियों ने बेतरह झकझोर दिया था उन्हें—"यों ही..."

"काफी देर हो गई..." नीलू ने एक लम्बा निश्वास लिया—"नीरद के लिये अब कोई खतरा नहीं रहा...बहुत दूर निकल गया होगा वह—अब ?"

"अब ?" दादा उसका ही शब्द दुहरा उठे।

नीलू ने उन्हें ग़ौर से देखा—"कैसे हो रहे हो ?"

"कुछ नहीं, कुछ नहीं !" दादा तत्त्क्षण सम्हल गये—"अब चला जाय..."

"कहाँ ?"

इसका जवाब ही क्या था उनके पास ?

दोनों ने यही सोच कर अब तक वहाँ काटा था कि अगर कहीं पता लगाते हुए पुलिस वाले आ भी गये तो उनसे ही निबट कर वापस लौट जायेंगे—नीरद की ओर उनका शक जा नहीं पाएगा। वैसे यहाँ तक आकर किसी को भी न पा, निशानों के जरिये अवश्य ही उनकी कल्पना गंगा के मार्ग पर दौड़ पड़ती और तब नीरद ?...

दादा जल्दी-जल्दी सामान बटोरने में लग गये।

नलिनी उनका हाथ बँटाने लगी।

रिवाल्वर और कारतूस बाहर निकाल तथा बहुत आवश्यक सामानों की ही गठरी बाँध, वे बलिदानी गंगा के किनारे-किनारे आगे बढ़ चले।

"शहर में चलोगे ?"

"क्या बताऊँ नीलू...."

वह फिर चुपचाप दादा के पीछे-पीछे चलने लगी।

सूरज की जवानी अग्नि-वर्षा कर रही थी।

पाँव तले की मिट्टी अंगरा बनी हुई थी।

पैर में जूता या चप्पल किसी के नहीं था।

"नीलू...." नीलू की हालत देख दादा रह-रह कर रुक जाते।

"कुछ नहीं, चलो..." अपने डगमग पैरों को सम्हालने के प्रयत्न में लगी वह असीम धैर्य के साथ कह उठती।

दादा फिर चलने लगते मन मारे।

दूर तक फैली हुई गन्तव्यहीन मंजिल का कहीं ठिकाना नहीं...

दोनों चलते रहे, चलते रहे।

गंगा की लहरें खामोशी में डूबी हुई थीं।

मातृ-भूमि की आज़ादी के दीवाने अब भी बन्धन-मुक्त माँ के हुलासमय चेहरे का स्वप्न देख रहे थे।

अपने बलिदानी पुत्रों का बलिदान भारत माँ के कलेजे में शूल-सा चुभ रहा था...

● ●

किसी न किसी तरह से नीरद ढाका पहुँच ही गया। २४ घंटे लगातार नौका के सफर के बाद उसने उसे छोड़ दिया। केवट उसकी 'तपश्चर्या' से इतना अधिक प्राभावित हुआ कि जब नीरद ने पारिश्रमिकस्वरूप कुछ रुपये देने को बढ़ाए तो वह उसके पैरों पर गिर पड़ा। कजरी अब होश में आ गई थी; पर उसके ज़ख्म की हालत प्रतिक्षण चिन्ताजनक होती चली जा रही थी। उसे वैसी हालत में लेकर आगे बढ़ना शेर की माँद में घुसने से कम खतरनाक नहीं। उसको सहसा कुछ सूझ नहीं पड़ा कि क्या करे?...कहाँ ले जाए उसे! श्रद्धावनत खड़े केवट से उसकी परेशानी छिपी न रही। नीरद अपने आपको प्रशान्त महासागर के कलेजे पर तिरता हुआ-सा किनारे की आशा में इधर-उधर निहारने लगा—यह जानते-समझते हुए भी कि उसकी आशा 'चकोर-मूर्खता' से भी कहीं अधिक पीछे है!

"बाबू!" केवट उसके और पास आ रहा—"अगर कुछ असुविधा न हो तो पास ही के गाँव में अपनी ससुराल है, वहाँ कुछ दिनों तक रहकर..."

नीरद को तो जैसे अक्षय-निधि मिल गई। उसकी सहायता से उसने कजरी को गाँव में पहुँचाया। केवट के ससुराल वालों ने आवभगत करने में कुछ भी उठा न रखा। केवट भी वहीं रह गया। उनके लिए एक अलग झोपड़ी खाली कर दी गई। नीरद ने गाँववालों पर यह प्रकट करना ठीक नहीं समझा कि कजरी को इतना भयानक ज़ख्म है और यही हिदायत

उसने केवट से भी कर दी थी। गाँववालों को उसने अपना परिचय, कजरी के पति के रूप में दिया। और उसके इशारे से केवट ने यह प्रचारित कर दिया कि बाबू उसके अपने पुराने 'ग्राहक' हैं। पत्नी के सख्त बीमार पड़ जाने की वजह से गाँव में आबहवा बदलने के लिए चले आए हैं। डाक्टरी सहायता मिल सकना वहाँ एकदम असंभव था।

केवट की लाई जड़ी-बूटियों का ही सहारा लेना पडा। और इससे फायदा भी बिजली की तरह हुआ।

कजरी का जख्म ऐसे स्थान पर था कि मरहम-पट्टी में किसी ग़ैर की सहायता लेना संभव नहीं था; इसलिए सब कुछ उसे ही करना पड़ता।

उसे भी यह एक मुसीबत-सी ही लगती; पर मजबूरी!—किसी तरह करना ही पड़ रहा था। जाने कैसा-कैसा लगने लगता उसे पट्टी करते समय। घंटों पहले से उसे साहस संचय करने की आवश्यकता करनी पड़ जाती थी। कजरी उसकी परेशानी समझते हुए भी नहीं समझ पा रही थी; आखिर बेचारी करती भी क्या?—कई बार, दबे स्वर में उसकी इस परेशानी के लिए रोका—"नीरद, तुमसे यह सब लगता है, ठीक से हो नहीं पाता...दवा वगैरह जुटा दिया करो, मैं अपने आप ही..." सुनकर पहले तो नीरद झुँझलाया; मगर फिर तुरन्त ही उसे मीठी-सी फटकार सुनाता हुआ, अपनी झुँझलाहट दूर करने का प्रयत्न करने लगता—"तुम तो हो पागल...इतना बड़ा घाव देखकर मन में जाने कैसा-कैसा होने लगता है। तुम्हीं बताओ, अगर मैं ही तुम्हारे स्थान पर होता तो क्या यह सब करते हुए तुम्हें कुछ भी दुख न हो पाता?..."

वह मुस्करा पड़ी।

नीरद को बड़ी रहस्यमय लगी उसकी वह मुस्कान—"सो तो सामने आने ही पर पता चलता..."

नीरद और अधिक झेंप उठा।

तभी कजरी ने अचानक ही उससे एकदम विचित्र प्रश्न कर डाला,

अजीब-से स्वर में—"और नीरद, तुम्हें नारी इतनी डरावनी क्यों लगती है ?"

"डरावनी...नहीं तो..." जल्दी से कह उठा काँपती आवाज में—"ऐसा तुम क्यों सोच रही हो कजरी !"

कजरी से उसकी घबराहट छिपी न रही। उसके सूखे होंठों की मुस्कान का गला घोंटती हुई विषाद की छाया दौड़ गई—"हाँ नीरद, बात ऐसी ही है....मगर मैं जानती हूँ, अपनी गलती, अपनी दुर्बलता पुरुष को कभी सह्य नहीं होती...और न वह उसे स्वीकार करना चाहता है... मगर हाँ, एक बात बताओगे ?—हाँ, कहो तो पूछूँ....नहीं तो..."

"पूछो न !" कहने को तो नीरद ने कह दिया, पर लगा अगर उसके वश की बात होती तो तुरन्त 'मोर्चा' छोड़कर भाग आता।

"पूछूँ ?"

"हाँ-हाँ !" जाने कैसे उसके मुँह से निकल गया—"मगर इसे भी याद रखो कि मैं इस समय तुम्हारा डाक्टर भी बना हुआ हूँ...."

"सो तो समझ रही हूँ और इसीलिए तो कहने की आवश्यकता भी आ पड़ी...तो पूछूँ ?"

नीरद कुछ जवाब नहीं दे पाया।

"चुप हो गए न ?"

"नहीं तुम पूछो ?"

"जाने दो..."

"कजरी, तुम क्या हो ?"

"बस, कजरी। और कुछ नहीं।"

नीरद को लगा वह काँप-सी उठी हो।

"नहीं ?"

"फिर तुम्हीं बताओ न ?" वह एकटक उसकी ओर देखने लगी थी।

"एकदम भूलभुलैया..."

"अच्छा !"

"हाँ, कजरी..."

"अच्छा, छोड़ो भी, अनुराग किसे कहते हैं, जानते हो !"

"कजरी !" उसका मस्तिष्क सनसना उठा—"यह आज तुम पर कौन पागलपन सवार हो गया है !"

"पागल तो तुम हो ही नीरद !"

"मैं पागल हूँ !"

"और नहीं तो क्या..."

वह कुछ सोचने मे लग गया था; अन्तर्द्वन्द तेजी से उबाल खाने लगा।

"नहीं बताओगे न !"

कजरी के स्वर ने उसे बड़ी जोर से झकझोर दिया, खोया-खोया कह उठा—"क्या !"

"हूँ, भूल गए न, अनुराग..."

"ओह, अनुराग...होता है...यों ही....अच्छा, अब बन्द करो, पट्टी बदलने का समय हो गया..."

"क्या !"

"पट्टी !" अपने आप में ही डूबा वह कह उठा और जल्दी-जल्दी, दवा-पानी का इन्तजाम करने लगा।

"रहने दो अभी, हाँ तो तुमने कहा, अनुराग हो जाता है यों ही, उसके लिए कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता—ठीक ! मगर यह होता क्या है नीरद, यह तो तुमने बताया ही नहीं..."

नीरद ने एक बार उसकी ओर तिरछे से देखा।

"इस मर्ज में पड़े बीमार की दवा जानते हो !"

"मर्ज....दवा...बीमार..."

"फिर घबरा गए ! अच्छा, हटाओ जाने दो...."

नीरद उसकी जाँघ से कपड़ा हटाकर घाव की सफाई मे लग गया। न जाने क्यों उसकी आँखें मुँद-मुँद कर रह जाती थीं। इधर उधर हाथ बहक जाने से, जख्म की करक से उठी पीड़ा की लहर का आवेग पा, कजरी के मुँह से आह निकल पड़ती।

"नीरद !"

"अब तो यह काफ़ी सूख चला..."

"नीरद..." वह होठों में फुसफुसाई।

मगर नीरद ने जैसे कुछ सुना ही नहीं—"जल्दी ही एकदम सूख..."

"टालने का प्रयत्न मत करो नीरद, अच्छा हो, रिवाल्वर से मेरा सीना चाक कर दो...."

"बहुत पीड़ा हो रही है क्या !..."

कजरी को ऐसा लगा जैसे नीरद के कानों ने अपने काम से छुट्टी ले ली हो। परेशान हो उठी।

"मेरी ओर देखो न..."

"तुम तो बस, पागल हो गई हो..." तभी उसका हाथ पट्टी बाँधते-बाँधते, घाव के ऊपर से हटाकर एक ओर मुड़ी हुई साड़ी से स्पर्श कर गया, सिहरन का झटका, निगाहों का शर्म मे डूब जाना—वह स्वयं नहीं जान पाया मगर कजरी ने अच्छी तरह अनुभव कर लिया।

काम खत्म कर वह जल्दी से बाहर निकल गया।

कजरी ने एक लम्बा निश्वास लिया, उसे जाता देख।

कहाँ बहती जा रही है वह ?

नीरद का पास में होना पागल क्यों बना देता है उसे ?—ऐसा तो कभी नहीं होता था !

फिर यह परिवर्तन क्यों ?

कॉलेज में मनोविज्ञान उसका प्रिय विषय रहा है—परन्तु आज

अपनी ही मन स्थिति के गोरखधंधे में पड़कर, उसकी सारी 'प्रियता' पलायनवादी बनती जा रही है।

गाँव में रहते हुए पन्द्रह दिन हो रहे थे।

कभी-कभी जब गाँव की औरतें उसके पास आकर नीरद की शालीनता की चर्चा कर बैठती तो अनायास ही उसको उद्विग्न हो उठना पड़ता। सभी नीरद को उसका पति ही मानने लगी थीं—बातों ही बातों में नीरद जैसा अलभ्य पति पाने के उसके भाग्य पर दबी-दबी जबान से ईर्ष्या भी प्रकट करने लगतीं। सुनकर उसका हृदय हुलास और विषाद के परस्पर विरोधी भावों से लबालब हो जाता था।

नीरद और उसका वर्षों का साथ रहा है मगर ऐसा कुछ तो कभी नहीं हुआ...

फिर आज यह सब क्या हो रहा है, क्या होने लगा है?—तभी दरवाजे से केवट के साले की बहू ने झाँका, उसने कोई ध्यान नहीं दिया, गया ही नहीं ध्यान। वह आकर उसके पास खड़ी हो रही—"बीबीजी!"

"ओह, तुम...आओ-आओ, बैठो..." कजरी ने जैसे नींद से जाग कर कहा। वह उसकी खाट के नीचे जमीन पर बैठ रही—"बाबू जी कहाँ गए?"

"बाबू जी!"

"हाँ....उनके नाम से इतना घबरा क्यों जाती हो?"

"नहीं तो..."

"नहीं तो क्या, हम उन्हें तुमसे छीन थोड़े ही लेंगे जी..."

कजरी धक्क से रह गई।

वह खिलखिलाकर हँस पड़ी।

तभी बाहर से नीरद आ गया।

वह जल्दी से सिमट कर भागी।

नीरद विचार-मग्न-सा इधर-उधर टहलने लगा था।

—

"नीरद !"

उसने मुड़कर देखा।

"मेरे पास आओ नीरद..."

"नहीं कजरी, आज जाने क्यों मैं बहुत परेशान हो उठा हूँ...."

"मेरे पास आओ न !..."

"नहीं कजरी..."

"डर लगता है ?"

"डर !...नहीं तो..."

"फिर ?"

वह धीरे से उसके पास आकर खड़ा हो गया।

"क्या सोच रहे हो ?"

"तुम्हारे ही बारे में..."

सुनते ही वह उत्सुकता में डूब गई—"मेरे ?"

"हाँ...नहीं...हाँ, मैं सोच रहा था, तुम्हारे पिता जी...."

"धोखेबाज..." वह हौले से फुसफुसाई।

नीरद फिलासफरों की भाँति खपरैल की ओर देखने लगा।

"नीरद, तुम मुझसे इतना दूर क्यों भागना चाहते हो !"

"दूर...नहीं तो..."

"क्यों छिपा रहे हो ?"

"नहीं कजरी, भला मैं..."

"जी, मैं खूब समझती हूँ..."

"तुम्हें भ्रम हो गया है कजरी..." वह उद्विग्न हो उठा था।

कजरी धीरे-धीरे उठकर बैठ गई।

"आओ, बैठो न !"

नीरद सहमता हुआ-सा आकर खाट पर एक ओर बैठ गया।

काफ़ी देर तक दोनों में से कोई भी कुछ न बोला। मौन क्रमशः गहन होता जा रहा था।

"दादा का कुछ समाचर!"

"आज केवट शहर तो गया है....कह दिया है, कोई अखबार जरूर लेता आवे..."

कजरी ने ही मौन तोड़ा और उसने ही उसे पुनः जमा भी दिया।

सामने दूर तक धान के लहराते हुए खेत फैले हुए थे। कजरी की निगाह दरवाजे के पार उड़ चली—"नीरद..."

नीरद ने चुपचाप उसकी ओर निहारा।

"उधर देखो..."

सामने धान की धानी चुनरी पहन कर धरती नाच उठी थी, मयूर की तरह।

नीरद विभोर-सा कुछ देर तक निहारता रह गया। हरियाली की सुषमा आँखों में धँस गई।

"कैसा रहा!"

"सुन्दर...."

"और कुछ!"

वह पुनः परेशान हो उठा—"तुम्हें तो मालूम है, मैं कवि नहीं हूँ कजरी..."

"फिर भी..."

'फिर भी' पूछने का मतलब खोज निकालने की कोशिश करता रहा।

"नीरद!" एक झटके के साथ कजरी को जैसे कुछ याद हो आया—"दादा और भाभी के सम्बन्ध में आज तक कुछ अधिक नहीं जान सकी..." कहते हुए उसने गौर से नीरद के उद्विग्न चेहरे की ओर देखा।

नीरद ने जैसे कुछ सुना ही नहीं।

दरवाजे के पास से कुछ ग्रामीण बालाएँ खेत की ओर से लौट, स्वर से स्वर मिलाकर किसी सरस मधुर गीत का आलाप लेती हुई निकल गईं—पर नीरद की विचार-शृङ्खला टूटी नहीं। उसके खोएपन से कजरी घबरा उठी।

"नीरद !"

"क्या है ?"

"कुछ नहीं !" कहकर कजरी उदासीनता से लिपटी लेट गई। नीरद से उखड़ापन छिपा न रहा। कजरी के पास आकर वह जाने किस अन्धकार में पड़ जाता था कि....आगे सोचने का क्रम नहीं बँध सका। कजरी ने उसकी ओर पीठ कर ली थी।

"मुझसे नाराज़ हो कजरी ?" धीरे से उसने कजरी की पीठ पर हाथ रख दिया।

कजरी मान से भर उठी थी।

पुरुष की तनिक भी उपेक्षा की चोट नारी के लिए जीवन-मरण की समस्या बन सकती है—अगर ऐसा नहीं हुआ तो चोट से बौखलाया नारीत्व अपने मान के 'ब्रह्मास्त्र' के प्रयोग की ओर उन्मुख हो उठता है और तब पुरुष की पुरुषता देखते ही देखते भीगी बिल्ली बनकर उसके चरणों मे लोटने को बाध्य हो जाती है। कजरी का मान न जाने क्यों नीरद के मन में हूक बनकर समा गया। क्रान्ति-चिन्तन की प्रज्वलन्तता में डूबा मन कजरी के कजरारे मान में उलझकर रह गया।

कजरी कुछ बोली नहीं। नारीत्व अपने मान की शक्ति तौल रहा था।

"कजरी !" नीरद उसके ऊपर झुक आया।

सन्ध्या रानी की छैल-छबीली काया वातावरण पर पसर गई।

दिवाकर को बारह घंटे की क़ैद होने में अब कुछ ही क्षण रह गए-से प्रतीत हो रहे थे। झोपड़ी में कुछ हलका पर बहुत स्निग्ध अन्धेरा झुकता चला आ रहा था।

नीरद को अपने आप पर खीझ होने लगी—

उसको कजरी की इतनी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए थी। उसे चोट पहुँचाकर उसे मिल भी क्या पाया!—सोचने लगा...

पुरुष की पुरुषता हाँफने लगी थी, नारी के मान के समक्ष।

धीरे से उसकी पीठ पलटाकर नीरद ने देखा, उसकी आँखें विजय के दर्प में भीग उठी थीं—जाने कैसे उसने कजरी का सर उठाकर अपनी गोद में रख लिया और उझले-रुखे केशों को, गालों पर छितरा जाने वाली बदतमीजी पर, उँगलियों को गरदनियाँ देने लगी। कजरी ने छलकती आँखों से उसकी ओर निहारा। नीरद ने जल्दी से आँखों की छलकन समेट लेने के लिए अपनी धोती की छोर रख दिया।

"कजरी!"

"...." वही मौन नाराजी।

"नहीं बोलेगी?"

कजरी के हाथों में कम्पन हुआ और उन्होंने नीरद का मस्तक अपनी छाती पर कर लिया।

नीरद को लगा कि जैसे उसके रोम-कूपों से वीणा की झनकार-सी फूट पड़ी हो, उस झनकार के माधुर्य में उसने अपने आपको लीन होता हुआ पाया।

समय की मशीन में सेकेंड मिनट में ढलने लगे। कजरी की धड़कनों की थपकियों में झपकी ले रहा नीरद का मस्तिष्क एक सर्वथा अपरचित अनुभूतियों के नशे से लड़खड़ा उठा, उसकी लड़खड़ाहट के हर शिकन से गमकीला शैथिल्य गमगमा रहा था।

"नीरद!"

"तुम मुझसे अब भी नाराज हो कजरी?"

"नहीं नीरद..." कजरी का स्वर काँप उठा।

नीरद ने अपने सर का बोझा कजरी के सीने पर और भी अधिक कर दिया। कजरी का हृद् कम्पन अब भी उसे थपकियाँ दिये जा रहा था।

जाने कितना समय अनुभूतियों की मधुमयी थिरकन में खो गया। सहसा कजरी के हाथों ने नीरद के गले में अपने हाथ को माला बनाकर डाल दिया। नीरद बेसुध-सा होता गया...

सन्ध्या का सुनहरा झुटपुटा रात-रानी के काले पराग में छुपने के लिये तत्पर हो उठा।

नीरद के गले में पड़ी 'माला' ने उसके सारे शरीर में झुरझुरी-सी व्याप्त कर दी थी। कुछ समझने और समझ कर सम्हलने की शक्ति ने उसका साथ छोड़ दिया था।

"नीरद, प्यार किसे कहते हैं?"

"प्यार...नहीं जानता कजरी!" नीरद फुसफुसाया। उसका गला प्रतिक्षण काँटा बनता जा रहा था, स्वर में चुभन-सी होने लगी।

"नहीं जानते?"

"नहीं..."

"और न जानने की कभी कोशिश ही की..."

"......" उसका सारा शरीर पसीने से लथपथ हो गया।

कजरी का क्रमशः बढ़ रहा 'पागलपन' उसे बेहोश किये दे रहा था। कजरी की लम्बी-लम्बी साँसों को अब वह अपने चेहरे पर महसूस करने लगा। गले में पड़ी 'माला' के बन्धन कसते गये, कसते गये...

अचानक एक झटके के साथ नीरद ने अपने को अलग कर लिया।

कजरी का स्वर थर्रा उठा—"नीरद...मेरे नीरद..."

नीरद खाट के नीचे उतर कर खड़ा हो गया—"अपने को सम्हालो कजरी....किस ओर बही जा रही हो..."

कजरी की आवाज और भी अधिक थरथरा उठी—"मैं बहना ही चाहती हूँ नीरद मेरे....कूल-किनारों से एकदम परे, बस, बहना...और कुछ नहीं...."

नीरद परेशान हो उठा।

कजरी कहती रही—"मैं जानती हूँ, हमारा मार्ग कुछ दूसरा ही बन चुका है...पर नीरद, जीवन की आवश्यकताओं से परे होकर किसी भी मार्ग पर अचल-अडिग रहना कभी संभव नहीं..." उसके स्वर में कम्पन का स्थान आवेश लेता जा रहा था—"जीवन की आवश्यकता ...आखिर तुम समझ क्यों नहीं पाते नीरद ?...जीवन का सबसे महत्-घड़ी होती है जवानी और कहा जाता है, जवानी जाकर फिर वापस नहीं आती...जवानी के दिन..."

नीरद पर परेशानी का पहाड़ टूट गिरा।

"कजरी !" वह तडपा—"बेकार की बातें, तुम्हारी तबियत ठीक नहीं....आराम करो..." और कहता हुआ वह दरवाजे की ओर मुड़ पड़ा।

"नीरद..." कजरी का स्वर इतना तरल, इतना वेदना-सिक्त था कि बरबस ही वह ठमक कर खड़ा हो गया—"मेरा हृदय कलुष से भर उठा है, यही समझ रहे हो न ! और तुम्हारा समझना अस्वाभाविक भी नहीं; परन्तु नीरद, यह सब अस्वाभाविक होते हुए भी अपने आप मे स्वाभाविकता की वह ज्योति सम्हाले है, जिसके बिना मानव, बेमाँझी की नाव की तरह जीवन की लहरों मे भटकता रहता है !—समझोगे इसे, आज नहीं तो कुछ दिन बाद...." कहकर वह हाँफने लगी। आवेग से उसकी मुद्रा लाल हो उठी थी।

नीरद का मस्तक घूम उठा।

वहीं फर्श पर सर पकड़ कर बैठ गया।

कजरी श्लथ-सी पड़ी अन्धेरे में उसे निहार रही थी।

तभी दरवाजे से किसी ने आवाज लगाई—"बाबू !"

नीरद को तो जैसे तिनके का सहारा मिल गया। लपक कर दरवाजे के पास आ रहा।

केवट शहर से वापस लौट कर आ गया था।

"बाबू, यह अखबार...बीबी जी की तबियत कैसी है ?..."

"ठीक है, ठीक है...." कहकर उसने केवट के बढ़े हुए हाथों से अखबार ले लिया। बड़ी मुश्किल से उसके मुँह से निकल गया—"दादा का कुछ समाचार..."

"नहीं बाबू..."

उसका माथा अब भी चक्कर खा रहा था, लग रहा था जैसे उसके पैर, भूचाल से डगमगा रही धरती पर खड़े हों।

केवट कहने लगा—"दादा जाने कहाँ होंगे बाबू...शहर में पता लगाने की बहुत कोशिश की पर....अखबार में देखें, शायद कुछ समाचार हो..."

नीरद धीरे-धीरे अन्दर चला आया, केवट भी साथ-साथ था। उसने किसी तरह से टटोल कर लालटेन जला दी। नीरद अपने आप में ही खोया अखबार से मुँह ढाँके एक ओर खडा था। खाट पर कजरी आँखें बन्द किए पड़ी थी।

बेचारा केवट घबरा कर कभी कजरी और कभी नीरद की ओर देखता रहा।

"बाबू!"

नीरद ने अखबार मुँह से हटाया तो केवट को अपनी ओर घूरता हुआ पा, मन सिहर गया उसका—"हाँ, ज़रा लालटेन इधर ले आओ...." कहता हुआ वह वहीं बैठ गया। केवट ने लालटेन उसके पास ला रखी। नीरद की आकुल आँखें अखबार से उलझ गईं।

"बाबू...कुछ!"

"नहीं!"

और उसने पुनः अपने को अखबार से उलझा लिया।

केवट विमूढ़, चिन्ता से आक्रान्त-सा उसकी ओर निहारता रहा।

सारा अखबार क्रान्तिकारियों की गिरफ्तारी के लच्छेदार समाचारों से पटा हुआ था। उस दिनवाला सी० आई० डी० इन्सपेक्टर उसकी गोली

खाकर घायल भर हो गया था। अस्पताल में अब स्वास्थ्यलाभ करता हुआ, बंगाल के क्रान्ति दल की जड़ खोदने में लगा हुआ था ! दादा का सारा भेद उसने पा लिया था और पुलिस की सारी ताक़त उस हडकम्पी तरुण बंगाली को खोज निकालने में लगी हुई थी, जो 'दादा' के रूप में सैकडों पागल युवकों को बरगलाकर गोरी सत्ता की नींव खोदने का षड-यन्त्र रचने में काफ़ी दूर तक सफलता प्राप्त कर चुका था। उस दिन के सघर्ष में हुए 'नुकसान' का बदला भी तो चुकाना था उससे।

यह अँग्रेजी अखबार का अपना मुलम्मा था समाचारों पर।

नीरद ने अखबार एक ओर पटककर दीर्घ निश्वास लिया—थका, घुटता हुआ-सा निश्वास। उसकी मुद्रा पर टहलती हुई परेशानी देख, केवट का साहस नहीं हो रहा था कि उससे कुछ पूछ सके।

कजरी लगता था सो गई थी। एक झटके के साथ उसकी आँखें खुलीं। कुछ देर पहले की उसकी 'विह्वलता' का कहीं नामोनिशान नहीं। मुद्रा दृढ़ता की ज्योति से प्रज्वलन्त बनी हुई थी।

"नीरद।"

नीरद को जैसे सैकडों बिच्छुओं ने एक साथ ही डंक मार दिया, आर्त्त आँखें कजरी की ओर मुडीं, फिर झपक भी गईं। कजरी धीरे से मोडकर सिरहाने रखे, कम्बल के सहारे उठँग गई—"दादा का कुछ समाचार !"

नीरद चौंके बिना न रह सका। कजरी के स्वर में आ गई दृढ़ता ने उसे झकझोर दिया—"नहीं कजरी..."

"और कुछ..."

नीरद ने उठकर अखबार उसके सामने कर दिया, केवट लपककर लालटेन उठा लाया।

कुछ देर कजरी अखबार में निमग्न रही। सहसा—"नीरद हमारा यहाँ रहना ठीक नहीं..."

नीरद कुछ कह न सका ।

केवट की आँखें आशंका से फट पड़ीं ।

"नीरद !"

उसका साहस नहीं हुआ कि कजरी की आँखों से आँखें मिला सके।

कजरी बिना इस पर कुछ भी ध्यान दिए कहने लगी – "मेरा जख्म अब काफी भर चुका है, चलने-फिरने में अधिक असुविधा न होगी..."

"कजरी !" नीरद के मुँह से आश्चर्य फूट पड़ा ।

कजरी क्षण भर के लिए अचकचाई; फिर—"हाँ नीरद, हमे अब यह स्थान छोड़ ही देना चाहिए..."

"पर..."

"पर-वर कुछ नहीं...." कहती हुई वह खाट से उतर पड़ी— "थोड़ा-सा सहारा देते रहोगे तो..."

"पर तुम्हारा जख्म चलने से हरा हो जाएगा कजरी...."

"नहीं नीरद..." उसके स्वर से इतना ओज फूटा पड़ रहा था कि नीरद चमत्कृत हुए बिना न रहा । उसके समक्ष रह-रहकर कुछ देर पहले वाली कजरी कौंध उठती—ज़मीन-आसमान का अन्तर आ गया था। कजरी के पहले वाले जिस रूप की ज्वाला में पड़ कर, नीरद का सारा व्यक्तित्व राख हो गया था, उसी राख की पुनः अंगारे मे बदल देने की कठोर क्षमता लिए, कजरी में आ गये ओज ने उसमें बिजली भर दी। कुछ ही देर का मौन, झोपड़ी के वातावरण को मथने लगा तो कजरी ने परेशान हो रहे नीरद के कन्धे पर हाथ रख दिया—"क्या सोच रहे हो तुम ?" कजरी के स्पर्श से रोमांचित हृदय को सम्हाले नीरद ने कुछ कहने का प्रयत्न किया कि कजरी बीच में बोल उठी–"नीरद, सोचने का मौका नहीं, पुलिस के हाथों पड़ने की अपेक्षा..." कहते-कहते ही उसने पास ही घबड़ाए-से खड़े केवट की ओर बड़ी तीव्र दृष्टि से देखा । पशोपेश में पड़े नीरद को जैसे किसी ने बिजली के हंटर से मारा । कजरी का रह-रह

कर केवट की ओर घूरना और उसके घूरने से घबराए-से केवट का मुँह छिपाने का प्रयत्न—बहुत रहस्यमय लगा उसे।

"नीरद, देर मत करो..."

नीरद ने एक बार कजरी की ओर देखा और तब जल्दी से सामान बटोरने में लग गया। थकी हुई कजरी ने धीरे से केवट की कलाई पकड़ ली—"तुमने हमारे साथ बहुत उपकार किया केवट भाई...मैं समझ रही हूँ, मेरा इस तरह पर चलने के लिए तैयार हो जाना, तुम्हें चिन्तित किए दे रहा है मगर मजबूरी....हम तुम्हारे लिए कुछ न कर सके....हम लोगों का जीवन ही तूफानी है, क्या करोगे..."

केवट भौचक्का-सा रह गया। कजरी की ओर देख सकने की उसकी हिम्मत नहीं पड़ रही थी।

सामान तो कुछ था नहीं, रिवाल्वर और दो चार कपड़े—बस।

उसके प्रति बार-बार कृतज्ञता प्रकट कर, नीरद कजरी को सम्हाले झोपडी के बाहर हो रहा।

दोनों के बाहर होते ही केवट ने अपना माथा ठोंक लिया। चारो ओर घिर आए अंधेरे में से चमचमाते चाँदी के सिक्कों की बरसात होती-सी मालूम पड़ी उसे। धम्म से वहीं बैठ गया। उसकी ठीक उस दरिद्र-सी दशा हो गई थी, जिसे कुछ देर के लिए राजगद्दी पर बिठा कर पुनः दारिद्र की ज्वाला में झोंक दिया गया हो। बडी बेचैनी से वह अपनी दोनों हथेलियाँ मलने लगा।

उस समय—

नीरद के सहारे जल्दी-जल्दी चलती हुई कजरी गाँव की सीमा पार करने ही वाली थी।

"कजरी..." चलते-चलते नीरद बोला—"तुम्हें केवट पर शक था?"

"हाँ!" कजरी ने अपने शरीर का चौथाई भार नीरद के कन्धे पर डाल दिया था—"दो-तीन दिनों से...मगर आज, दादा की गिरफ्तारी

पर पांच हजार रुपयों के पुरस्कार की घोषणा और उसकी उथल-पुथल में पड़ी मुद्रा ने शक को यक़ीन में बदल दिया। लगता है, आज तुमने उसके चेहरे पर रह-रहकर उगती-मिटती रेखाओं की ओर ध्यान नहीं दिया...उसके अन्तर का प्रतिबिम्ब साफ-साफ मुद्रा पर दीख रहा था..."

कजरी की सावधानता ने नीरद को एक बार फिर हलचल में ला पटका।

नारी !

'क्षण में क्या और क्षण में क्या ? - मन ही मन तुलनात्मक-चिन्तन करने लगा। मौक़ा पड़ने पर बलि-वेदी पर चढ़े निस्सहाय-निरीह पशु-सी और दूसरे ही क्षण दुर्गा के रूप में शक्ति की साक्षात प्रतीक !--बहने लगी तो अपने आप तक का ज्ञान नहीं रहा और सम्हली तो अपने साथ दूसरों को भी सम्हाल लिया। अपने चौबीस साल के जीवन में नारी के इन रहस्यों से सर्वथा परे रहा। नारी की क्षमता और शक्ति का आभास पा चुका था, परन्तु इस रूप में नहीं—उफ् !...कजरी के आज वाले दोनों रूपों ने उसे विस्मय के इतने गहरे सागर में डुबो दिया कि जिसकी गहराई का माप भी नहीं मिल पा रहा था।

दोनों गंगा के किनारे आ गए थे।

विचारों के झंझावाती-विजन में भटक रहे नीरद को मालूम ही नहीं हो पाया कि वह गंगा के उसी तट पर आ गया है, जहां पन्द्रह-दिन पूर्व मरणासन्न कजरी को लिए पहुँचा था। नौकरशाही गृद्ध-दृष्टि का भय उस समय भी था और इस समय तो वह निश्चायात्मक रूप में सामने आ पड़ा था—यह नीरद को तब भान हुआ, जब कजरी ने उसे झकझोर दिया।

"ओह, हम यहाँ तक आ पहुँचे कजरी !" अचकचा कर पूछ उठा। कजरी रास्ते भर उसकी मुद्रा का अध्ययन करती रही थी और उसके इस खोएपन का मर्म भी उससे छिपा नहीं था। उसके मूल में वह स्वयं जो थी—छिपता भी भला कैसे !

नीरद की बात का सहसा कुछ जवाब देते न बन पड़ा उससे। चुपचाप गंगा की ओर निहारती रही। रह-रहकर अपनी उस 'विह्वलता' का स्मरण हो आता और उसके रोंगटे खड़े हो जाते। फिर भी अन्तर के पश्चाताप जनित सिहरन का आभास चेहरे पर न झाँकने पाए, इसके लिए वह अपनी सम्पूर्ण आत्मशक्ति के साथ प्रयत्नशील थी।

"नीरद !" कुछ देर बाद उसे बोलना ही पड़ा—"अब हमें ढाका शहर में पहुँचना ही चाहिए...दादा का यही आदेश भी तो था मगर..."

"मगर !..." नीरद बिलकुल अनिश्चित-सा हो रहा। उसका मस्तिष्क बड़ी तेजी से आन्दोलित था।

"नीरद !" कजरी ने घबराकर उसकी ओर देखा—"इस तरह से खड़े रहने से काम नहीं चलने का...वह देखो, नाव बँधी है...चाँदनी रात हमारी सहायता करेगी...जल्दी करो..."

"पर....यह तो केवट की..."

"चाहे जिसकी भी हो, जान बचाने के लिए विषपान भी अनुचित नहीं समझा जाता...कुछ दूर चलने पर हम इसे छोड़ देंगे ..थोड़ी-सी कोशिश और मेहनत करके वह अपनी नाव पा सकता है "

नीरद क्षणभर खड़ा सोचता रहा; फिर जल्दी से उसने सम्हालकर कजरी को नाव पर बिठाया, किनारे खूँटे से बँधे रस्से को खोलकर, डाँड़ों को सम्हाल लिया। थकी-सी कजरी लेट गई। चाँदनी का प्रतिबिम्ब समेटकर गंगा की लहरें सुनहरी हो उठी थीं।

नीरद के मुँह से एक लम्बा उच्छ्वास निकल गया। नाव शीघ्र ही किनारा छोड़कर बीच धारा में आ गई। कजरी लेटा-लेटी उसकी ओर एकटक निहार रही थी। नीरद को जाने कैसा-कैसा लगने लगा। मन का आलोड़न आँखों को कजरी की ओर ठेलने का प्रयत्न करने लगा रह-रह कर, पर उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि आखिर यह सब क्यों हो रहा है।

वातावरण सन्नाटे में डूबा हुआ था। नौका खिसकती चली जा रही थी।

● ●

नीरद के हाथ से अखबार छूटकर बिखर गया। उसका मन काँपा, मस्तिष्क काँपा और काँप उठा तन का एक-एक अणु। अपने सामने सारी चीजें उसे घूमती-सी जान पड़ीं। पास ही पलंग पर कजरी सोई थी। आँखों की काँप रही पुतलियों ने एक बार उसकी ओर निहारा और तब वह बच्चों की तरह फफक-फफककर रो उठा। कजरी की नींद एक झटके के साथ टूटी, उसे रोता हुआ पाकर, सहसा अपनी आँखों पर विश्वास नहीं कर पाई। उठकर उसके पास आ रही—"नीरद... तुम रो रहे हो नीरद....क्यों, आखिर..." और तभी उसकी निगाह पास ही फर्श पर बिखरे अखबार के पन्नों पर पड़ गई। पहले ही पेज पर ब्लेक बार्डर में छपा था—दादा और पुलिस के बीच जमकर संघर्ष....दो घंटे की अनवरत अग्नि-वर्षा के बाद शहादत की नींद...पचीसों पुलिसवाले हताहत...दादा के कन्धे से कंधा लगाकर संघर्षरत भाभी मरणासन्न अवस्था में गिरफ्तार...इन हेडिंगों के बाद बहुत संक्षेप में विवरण दिया गया था! अखबार तीन पेज का था। दो पेज में क्रान्ति-दल के कार्यों और उद्देश्यों की चर्चा की गई थी। कजरी का मन बड़ी जोर से रो उठने को हो रहा था, परन्तु उसकी आँखों में शून्य के सिवा आंसू की एक बूँद भी नहीं आ सकी।

"नीरद!"

नीरद का फफकना बन्द हो गया। उसकी आँखों के आँसू सूखकर अंगारे की भाँति दहकने लगे थे।

"कजरी !" वह फर्श पर कजरी के एकदम पास आ रहा—"मैं रो उठा, इसलिए कि अपने आपको भूल गया था...तुम...तुम...पुरुष को नाहक ही कठोर कहा जाता है....नाहक ही....तुमने इतनी बड़ी चोट खाकर भी अपने को विचलित नहीं होने दिया। आँसुओं की कायरतापूर्ण धारा को आन्तरिक-ज्वाला में भस्म कर दिया मगर...उफ् !"

कजरी असाधारण रूप से गंभीर हो उठी थी। आँखों में तैरता शून्य प्रतिक्षण ज्वलंत होता जा रहा था—"नीरद !" कहकर उसने सामने पड़ा अखबार उठा लिया—"यह अखबार कौन-सा है, इसे तो मैं पहली ही बार देख रही हूँ..."

नीरद को झटका लगा।

"हाँ !"

"कैसे मिला ?"

"शिव का आदमी दे गया..."

तभी नीचे से किसी ने घबराई आवाज में पुकारा—"नीरद... दरवाजा खोलो..."

"लगता है शिव ही है !" कहता हुआ नीरद लपककर आँगन में आ रहा—"कौन, शिव ?" ऊपर आने की सीढ़ी के बन्द दरवाजे के पास आकर वह पूछ उठा।

"हाँ...जल्दी...."

नीरद ने दरवाजा खोल दिया कोई आँधी-सा वह अन्दर चला आया।

"अखबार मिल गया था तुम्हें ?"

"हाँ !"

दरवाजा बन्द करते हुए दोनों ऊपर कमरे में आ रहे !

कजरी दीवार से सर टिकाए, विचार-मग्न बैठी थी।

"नीरद, मुझे विश्वस्त रूप में पता लगा है, दादा शहीद नहीं हुए हैं...भाभी के साथ पुलिस के हाथों..."

"पर यह अखबार...."

"कह नहीं सकता, मेरे पास पोस्ट से आया और इसकी हजारों प्रतियाँ कलकत्ता में एकदम गुप्त रूप से सड़कों पर पड़ी मिली हैं..."

"तब ?"

"हमें आज ही कलकत्ते के लिए...पर कजरी का जख्म ?..."

"मैं ठीक हूँ, मेरी चिन्ता न करो शिव भाई..." कजरी उनके पास आ गई थी। नीरद ने चौंककर देखा, उसकी आँखों से कठोर निश्चय की ज्योति फूटी पड़ रही थी।

शिव ने भी क्षण भर तक उसकी ओर देखा और तब—"नीरद ढाका पुलिस को हमारा सुराग लग चुका है...आज ही सेठजी ने हमसे यह बात कही है और उधर पुलिस के हाथों दादा और भाभी कैसी-कैसी यातनाएँ....उफ् ! उनका शहीद हो जाना कितना आवश्यक था इससे... दादा अनुभवी होते हुए भी..."

"दल के और साथी ?" सहसा कजरी पूछ उठी।

"कुछ तो गिरफ्तार हो गए...और कुछ..."

"धोखेबाज !" कजरी के मुँह से निकल गया।

"तुम्हारे साथ और कौन-कौन..."

"किसी पर विश्वास नहीं किया जा सकता नीरद..."

"अच्छा !..." नीरद ने दाँत पीसा।

"हम आज ही ढाका छोड़ देंगे नीरद..."

"ठीक है..."

शिव ने अपने साथ लाए झोले से दो रिवाल्वर और सैकड़ों कारतूस निकालकर फर्श पर रख दिए—"कजरी, देखो, दो-चार कपड़ों के साथ इसे भी अटैची में रख लो...अपना रिवाल्वर बाहर ही रखना...अपने पास..."

कजरी ने अटैची ठीक कर ली।

आनन-फानन में तीनों तैयार होकर घर के बाहर हो रहे।

नीरद और शिव यू० पी० के कोई साधारण गृहस्थ और कजरी बहू के वेश में थी। बड़े-से घूँघट में उसका सारा चेहरा छुप गया था। बहुत भडकीले लाल रंग की चुनरी से कोई भी उसे नव-विवाहिता बहू का अनुमान लगा सकता था। कलकत्ता मेल तैयार खड़ी थी।

फर्स्टक्लास का टिकट लेकर तीनों चढ़ गए।

एक होल्डाल तथा दो अटैचियों के अतिरिक्त उनके पास और कोई सामान नहीं था।

ट्रेन ने जब स्टेशन छोड़ा तब कहीं तीनों की जान में जान आई।

शिव ने शीघ्र ही अपने अगल-बगलवालों से जान-पहचान कर ली।

''कलकत्ता जा रहे हैं?'' एक ने पूछा।

''जी हाँ!...''

''वहीं रहते हैं?''

''नहीं भाई, अपने लोग तो बनारस के रहनेवाले हैं...'' उसने नीरद की ओर इशारा किया—''यह मेरा छोटा भाई है और यह इसकी बहू... एक रिश्तेदार से मिलने के लिए कलकत्ता जा रहे थे कि बहू का मन ढाका देखने को हो गया...दो दिन यहाँ रहकर अब...''

''कलकत्ते की हालत तो बड़ी खराब है भाई...'' कुछ देर रुककर सामने के बर्थ पर बैठे हुए एक सेठ साहब झुँझलाए हुए-से बोल उठे।

शिव ने घबरा कर उनकी ओर देखा—''वही साले क्रान्तिकारियो वाली बात न...क्यों भाई साहब, इधर कुछ नई बात तो नहीं हुई.... दो-तीन दिनों से अखबार नहीं देख सका। क्या पागलपन सवार है बेवकूफों के ऊपर कि कुछ समझ में नहीं आता। चले हैं, दो-चार-दस पिस्तौलों से अँग्रेजी राज को हराने। अरे साहब, बड़ों-बड़ों को जिसने चुटकी में मल कर खत्म कर दिया, उसकी...'' उसने कुछ इस ढंग से

रूपक कसा कि कम्पोर्टमेण्ट का वातावरण एकदम बदल गया। सभी उत्सुकतापूर्वक उसकी ओर देखने लगे। एक खद्दरधारी सज्जन भी थे, उन्होंने तुरन्त ही वह लम्बी स्पीच झाडी कि सभी चमत्कृत हो उठे। महात्मा जी का नाम ले-लेकर उन महानुभाव ने क्रान्तिकारियों को चुन-चुन कर गालियाँ सुनाईं और उनकी स्पीच तभी बन्द हुई, जब कोसने और गाली के शब्दों से उनका कोश बिल्कुल खाली हो गया। नीरद को पहले तो बहुत गुस्सा आया, परन्तु परिस्थिति का ध्यान आते ही अपने को जब्त कर गया और धीरे-धीरे इधर-उधर की बातें करने में लग गया कजरी से। शिव उन नेताजी से चिमट गया था। उनकी बात और गालियों में काफ़ी रस ले-लेकर वह हाँ-में-हाँ मिलाये जा रहा था। उसकी तेज निगाहों से कम्पार्टमेंट में घुसते ही यह छिपा न रहा कि यह-यात्री के रूप में एक सी० आई० डी० भी है। उनके आते ही वह चौकन्ना-सा हो गया था। मगर जब शिव ने कुछ दूसरा ही रंग बदला तो उसके माथे पर पड़े शंका के बल देखते ही देखते चौरस हो गये। अगले ही स्टेशन पर जब वह उतरने के लिए उठा तो शिव की निगाहें उसकी मुद्रा का गंभीरतापूर्वक अध्ययन कर रही थीं, इतने छिपे रूप में कि किसी को भान तक नहीं हुआ। नेताजी जी भी कलकत्ता ही जा रहे थे। शिव अब उनकी बातों में अधिक रस नहीं ले पा रहा था। उसका स्थान एक दूसरे सज्जन ने ले लिया था। बात-चीत का दौर अब कांग्रेस की आलोचना-प्रत्यालोचना की ओर हो गया था। गाँधी जी की नीति की असफलताओं की टीका सुनकर नेताजी एकबारगी ही फुफकार उठे—"हाँ साहब, हाँ, गाँधी जी तो महज मजाक कर रहे हैं। और काम तो कर रहे हैं आपके आवारे क्रान्तिकारी, क्या खूब, सर पटक कर रह जाँय परन्तु महात्मा जी की ख्याति का मुकाबला वे लौंडे क्या करेंगे..."

दूसरे सज्जन भी जोश में आ गये—"क्या बेकार की बातें कर रहे हैं आप भी, मेरे कहने का कुछ मतलब ही नहीं समझ में आया आपके।"

"क्या बकवास करते हैं!"

"बकवास है यह।"

"और नहीं तो क्या!"

"चुप रहिये..."

"मैं कहता हूँ आप..."

"क्या आप ही ने अक्ल का ठेका ले रखा है..."

"आप मूर्ख हैं!"

वातावरण मारपीट तक की गरमी पर उतर आया।

नीरद, कजरी और शिव मन ही मन मुस्करा रहे थे।

दूसरे सज्जन तिलमिला उठे।

"जबान सम्हालें!"

"क्या कर लोगे जी!"

नेताजी दबनेवाले जीव नहीं थे। तड़पकर खड़े हो गये। हालाँकि उनका प्रतिद्वन्द्वी शारीरिक रूप में इतना चौचक था कि उसके एक ही झापड़ में बेचारे चटनी होकर रह जाते मगर जोश में किसी को कुछ नहीं सूझता है!

हालत प्रतिक्षण सीरियस होती जा रही थी।

कम्पार्टमेंट के यात्री शंकित हो उठे।

पर आ रहा था आनन्द; इसलिए बीच-बचाव का कोई 'मूड' नहीं बना सका।

शिव ने घबराकर देखा—

नेताजी की मरम्मत होने में अधिक देर नहीं थी।

बरबस आ रही जोरों की हँसी को रोककर वह बीच में आ गया।

"अरे-अरे...."

"आप हट जाइए!"

"अबे तू कर ही क्या लेगा हमारा।"

नेताजी तड़पे। उनका जोश सीमा पार कर गया था।

"कमीना कहीं का...अधिक बकवाएगा तो उठाकर गाड़ी के नीचे फेंक दूँगा..." और वे उछल कर खड़े हो गए।

"हाँय-हाँय!"

शिव ने किसी तरह दोनों को शान्त किया।

एक दूसरे को कच्चा चबा जानेवाले पोज में दोनों शेर घूरते हुए अपने-अपने स्थान पर बैठ गए।

कम्पार्टमेंट के कोनों से हँसी सर उठाने लगी थी। शिव ने दोनों को एक बार फिर समझाया और आकर बैठ गया।

"चलो साले कलकत्ता, कटवाकर हुगली में न फिकवा दिया तो मेरा नाम..." नेताजी फुसफुसाए; पर उनके प्रतिद्वन्द्वी के कानों ने सुन ही लिया। सुनते ही गरजे—"अबे, यहीं क्यों नहीं निपट लेता..."

"हूँ!..." शिव ने देखा, कुछ मजा लेनेवाले शौकीन पुनः आग भड़काने में लग गए थे।

दोनों का वाक् युद्ध अब श्लीलता से आगे बढ़ गया।

एकदम खुले रूप में 'माँ-बहन-बेटियों की खबर' ली जाने लगी, नग्न से नग्न शब्दों में।

"तुम लोगों को शरम नहीं आती..." शिव ने देखा, एक अधेड़ सज्जन तमतमा कर खड़े हो गए थे—"बहू-बेटियों के सामने...तुम्हारी आँखें फूट गई हैं क्या?....देखते नहीं—"

कम्पार्टमेन्ट में कजरी के अतिरिक्त एक और युवती बैठी थी।

उनकी डाँट ने आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त की।

दोनों शान्त हो गए।

गाड़ी भागी जा रही थी।

शिव के साथ ही नीरद और कजरी भी विचारमग्न थे।

छोटे-मोटे स्टेशनों की उपेक्षा करती हुई ट्रेन की गति में क्रमशः तीव्रता आती गई। कलकत्ता के बीच की दूरी तेजी से सिमटने लगी।

कम्पार्टमेंट में सन्नाटा छा गया था। नेताजी कटोरदान खोलकर खाना खाने में लग गए। दूसरे सज्जन 'माडर्न रिव्यू' के पन्नों में उलझ गये थे।

नीरद सोच रहा था—कभी दादा के विषय में, कभी अपने विषय में, कभी कजरी और कभी अपने भविष्य....

दल तो अब निस्सन्देह छिन्न-भिन्न होकर रह जाएगा। अंग्रेजों के हाथ में दादा का पड़ जाना....उफ्!—उसे रोमांच हो आया। कैसी-कैसी यातनाएँ...भाभी...उनके खून के प्यासे थे अंग्रेज...रह-रह कर उसकी मुट्ठियाँ कस जातीं।

विचारधारा पलटी—

भारत!

इसी भारत के लिये तो अपने आपको होम कर देना चाह रहे हैं वे पर इसके एवज़ में मिल क्या रहा है?—बेवकूफ़ी का सर्टिफिकेट...देश के प्रति गद्दारी का तमगा।

ओह!

क्या सचमुच अपनी मातृभूमि की आज़ादी के लिए मर मिटना, अपने आपको होम कर देना बेवकूफ़ी है...गद्दारी है!—चाहे जो कुछ भी हो, ऐसी मान्यताओं के पोषक, समर्थक भारतवासी ही हैं—उसके अपने भाई!

महात्मा गाँधी!...

बिजली की तरह मस्तिष्क में कौंध गया—

उनका दिखाया गया आज़ादी का मार्ग!

साहसपूर्ण तो है, अपूर्व तो है...पर है एकदम अंधकारपूर्ण। ठीक

वैसी ही कल्पना, जैसी चूहे बिल्ली का मुकाबला करने के लिये किया करते हैं...

तभी किसी के मुँह से निकल गया—"अगला स्टेशन ही कलकत्ता है !"

नीरद चौंक पड़ा ।

बगल मे बैठी कजरी ऊँघने लगी थी । शिव दोनों घुटनों के बीच मे सर डाले कुछ सोचने में निमग्न था ।

नीरद ने धीरे से कजरी को सावधान कर दिया । वह सम्हल कर बैठ गई ।

हवडा का विशाल प्लेटफार्म दीखने लगा ।

गाडी की चाल मंद होने लगी ।

शिव की चौकन्नी निगाहें एक बार कम्पार्टमैंट और खिड़की के बाहर प्लेटफार्म पर घूम गईं । संतोष की एक साँस लेकर उसने दोनों अटैचियाँ उठाकर हाथ मे ले लीं । नीरद ने होलडाल सम्हाल लिया ।

प्लेटफार्म के बाहर आते ही कजरी ने घूँघट के अन्दर से ही देखा—उसके बड़े भाई साहब अपनी टैक्सी से उतर रहे थे । जल्दी से आगे बढ़ गई । घर और पिताजी की याद का झटका-सा लगा मगर...

* * * *

"मगर तुम चाहते क्या हो ?"

होटल के अपने कमरे में बेचैन-से इधर-उधर टहल रहे नीरद के कंधे पर कजरी ने हाथ रख दिया—"दादा की हालत सुन कर मेरा खून खौल रहा है कजरी...." नीरद बोल उठा ।

"मगर..."

"मगर हम लाचार हैं—यही न ?"

"करोगे भी क्या ?"

"हूँ !" नीरद के मुँह से एक हुँकार-सी फूट पड़ी—"मैं उस मरदूद को गोली मार दूँगा...आज ही..."

"नीरद !"

"मुझे डिगाने का प्रयत्न न करो कजरी...."

"कुछ सोचो..."

"कुछ भी नहीं।"

उसके निश्चय से कजरी घबरा गई।

स्थिति एकदम खराब थी।

दादा की एक-एक बोटी अलग कर दी गई, दल के संबंध की जानकारी के लिए मगर कुछ हो नहीं पाया। भाभी के सामने ही यह सब हुआ परन्तु उन्हें दहला कर कुछ मालूम करने का प्रयत्न भी व्यर्थ ही हुआ तो झल्लाकर गोली मार दी गई...पता लगाता हुआ शिव तभी वहां पहुँचा... पहले मेजर जेम्स ने भाभी को धक्का देकर जमीन पर गिरा दिया और तब उस नराधम ने अपने रिवाल्वर की नली भाभी के प्रजनांग से लगाकर गोली दाग दी...शिव के पहुँचने के पूर्व ही सब कुछ समाप्त हो गया था....वहाँ का दृश्य देखकर वह पागल हो गया...रिवाल्वर निकाल कर बिना कुछ सोचे-समझे उसने फायर कर दिया...निशाना ठीक नहीं लगा....मेजर जेम्स साफ-साफ बच गये...और तब वहाँ उपस्थित सैनिकों ने संगीनों से उसके सिर को छलनी बना दिया।

"मेजर जेम्स !" नीरद ने होंठ काट लिए, आवेश से उसका सारा शरीर थर्रा उठा।

कजरी ने देखा मगर कुछ कह नहीं सकी। जिस समय एक दूसरे साथी से यह समाचार मिला, उसी समय से दोनों क्षोभ मे डूबे हुए थे। नीरद के प्रण ने पहले तो उसे सहारा दिया, परिणाम की कल्पना से; परन्तु शीघ्र ही दादा, भाभी और शिव की एकदम ताजा चोट ने सिरहन

में दब-से गए विमोक्ष को विस्फोटक रूप में उभार दिया। अपनी कमजोरी पर बड़ी ग्लानि आ रही थी उसे। कुर्बानी कभी सांसारिक मोहमाया को अपने पास नहीं फटकने देती। पुलिस ने पता जानने के लिए, उसके घर-वालों को काफी परेशान किया और वह सब देख न सकने के कारण ही रायबहादुर का हार्टफेल हो जाने से मृत्यु हो गई। घर पर उसका अपना है ही कौन। भाइयों की आँखों में, रायबहादुर के सामने ही वह काँटा बन कर चुभा करती थी...अब तो...मोह...रह-रह कर नीरद के प्रति अन्तर मे मोह का आलोडन हो उठता था और तब न चाहकर भी वह विह्वल हो उठती थी। कुछ दिन पूर्व अपने हृदय को फौलाद का बना समझती थी और इसका उसे गर्व भी कम नहीं था। अपने तेईस-चौबीस के जीवन में बीते हुए कुछ महिनों को छोड़कर कभी यह अहसास ही नहीं हो पाया कि वह नारी है और नारी का जीवन पुरुष के साहचर्य के बिना अधूरा हुआ करता है। और होता भी क्यों न!—दादा के बलिदानी सम्पर्क ने इन सब के बीच में घुलने का कभी मौक़ा ही नहीं दिया था। कभी-कभी दादा और भाभी का साथ उसे चौंकाता अवश्य था मगर तभी मन एक झटके के साथ मुड़ जाता। क्षण भर के लिए आई हुई 'नारी' की आभा, तुरन्त ही मिटने लगती, मिटते-मिटते एक दम मिट जाती। सेक्स पर उसने काफ़ी पढ़ा था मगर कभी अपने को उसमे डुबा देने को आकुल-व्याकुल होता हुआ नहीं पाया। फ्रायड आदि यौन-आचार्यों के सारे सिद्धान्त, उसके व्यक्तित्व की कठोर काया से सर टकरा कर रह जाते और वह उनकी दिग्विजयी शक्ति, शक्ति के प्रभाव को चुनौती-सी देती हुई पुनः अपने आप मे रम जाती। परन्तु वही कजरी, आज इतनी कमजोर क्योंकर हो उठी है...नीरद का बलिदान कभी उसके गर्व का विषय होता पर आज वह अपने में, नीरद में फ्रायड को देखने लगी थी...सेक्स के अपराजित सिद्धान्तों की सत्ता की महत्ता उससे अपनी प्रज्वलन्त विचार धाराओं से भी महत् लगने लगी थी—ऐसे समय...

ओह ! कजरी...उफ् ! इतनी घृणय !....इतनी दुर्बल !!...कजरी... कजरी...उसका अन्तर हाहाकार कर उठा ।

नहीं !

यह कभी नहीं होगा ।

कभी नहीं।

कजरी !

अब भी वही कजरी है, बिल्कुल वही ।

"कजरी !"

नीरद की आवाज ने उसे बुरी तरह से झकझोर कर रख दिया । घबरा कर उसकी ओर देखने लगी ।

"कजरी !"

"नीरद !"

"क्या सोचा !"

"जो तुमने, वही नीरद !"

"पर तुम..."

"मैं तुमसे अलग हूँ भी कहाँ नीरद !"

नीरद फेर में पड़ गया, उसके पागलपन से परिचित था ।

"तुम अपने मामा के यहाँ चली जाओ कजरी ।"

"मामा के यहाँ..."

"हाँ !"

"सो क्यों !" उसका कंठ आवेगकम्पित हो उठा ।

"कजरी..."

"ओह, तुम्हें मेरा मोह लग रहा है नीरद !"

"हाँ, जाने क्यों, तुम चली जाओ...मेरे लिए, अपने नीरद के लिए..." उसने अपने काँपते हाथों से कजरी की कलाई कसकर जकड़ ली—"मैंने तुमसे अब तक कुछ माँगा नहीं और अगर तुमने कुछ देने

का प्रयत्न भी किया तो इनकार कर दिया, न चाहते हुए भी, मगर आज नीरद तुमसे, अपनी कजरी से भीख माँग रहा है....भीख माँग रहा है... भीख..." उसकी दशा पागलों जैसी हो रही थी, दोनों हथेलियों से आँखें मीच लीं उसने।

क्षणभर पहले की स्वयं विह्वल कजरी को आश्चर्य हुए बिना न रहा कि उससे भी अधिक विह्वल हो गए नीरद की उसने कुछ भी परवाह न की और अचल-अडिग बनी रही—"तुमको कभी इतने कायरतापूर्ण स्थिति में देख पाऊँगी, कभी आशा नहीं थी...हो क्या गया है तुम्हें !"

"कायर !"

"हाँ, मैं लज्जा में डूब गई हूँ नीरद..."

"लज्जा !"

"हाँ जब कि तुम्हें..."

"कजरी..." नीरद आकाश से ज़मीन पर गिरा !

कजरी के पहेलीमय व्यक्तित्व के हिमालय सरीखे बाँध से टकराकर, उसके दौर्बल्य की सरिता की तेज़ी एकदम निष्प्राण होकर रह गई। वह अपलक उसकी ओर निहारता रहा और कजरी अपनी आँखों में विजय की प्रदीप्ति सँजोए, उसके बालों से खेलती रही।

कुछ ही देर बाद—

दोनों योजनाओं में निर्लिप्त हो गए।

उनके हृदय में प्रतिशोध की ज्वाला धधक उठी, जिसमें मेजर जेम्स का होम शीघ्र ही होने वाला था। गोली मारने की अपेक्षा उसकी मोटर को बम से उडा देने का ही विचार अधिक सुविधाजनक प्रतीत हुआ।

मेजर जेम्स बंगाल के क्रान्ति-दल-उन्मूलन के प्रधान अधिकारी, केन्द्र की ओर से नियुक्त हुए थे। उनकी बर्बरतापूर्ण दमन-नीति ने देखते ही देखते बंगाल में हलचल-सी मचा दी। क्रान्तिदल का बहुत कुछ खात्मा हुआ भी। विजय के मद में चूर वह नित्य शाम को अपनी खुली जीप में

कलकत्ता की मुख्य-मुख्य सड़कों का चक्कर लगाता। जनरल डायर की याद दिलानेवाला यह दुस्साहसी मेजर, कलकत्ता में राहु-सा छा गया था।

उसकी जीप में भरी हुई राइफलें ताने पाँच सैनिकों के अतिरिक्त आगे-पीछे दो जीपों पर दस-दस सशस्त्र सैनिक चौकन्ने बैठे रहते। अपनी समझ से उसने क्रान्ति-दल का सफाया ही कर दिया था; इसलिए क्रांति कारियों के जीवट का लोहा मानता हुआ भी वह निश्चिन्त हो उठा था। पुरस्कार स्वरूप सरकार की ओर से मिलनेवाला सेना का उच्चपद, उसको पागल बना देने को काफ़ी था।

नीरद ने किसी तरह कजरी के साथ एक थिएटर-हॉल की दूसरी मंजिल में पहुँचकर निशाने की ताक लगा दी। उसके पास दादा के द्वारा बनाए, पाँच भयानक बम थे, जिसे शिव ढाका से लेता आया था। निश्चित समय पर मेज़र की सवारी गुजरी। थिएटर का मैटनी शो अभी-अभी खत्म हुआ था। दर्शकों की भीड सड़कपर फैली हुई थी। अपने नीचे से जाती हुई मेजर की जीप; भीड़ की वजह से ज्यों ही कुछ रुकी कि...

धड़ाम-धड़ाम-धड़ाम...

कुहराम मच गया।

बम एक दम निशाने पर बैठे थे। मेजर की जीप समूची उड गई थी।

वह भागने के लिए मुडा ही था कि सहसा कजरी ने उछलकर मुँडेरे से छलांग लगा दी। सहसा उसकी कुछ समझ में नहीं आया कि यह सब क्या हो गया। छलांग लगाते-लगाते कजरी की आवाज—"नीरद.... विदा....भागो....अपने को..." सुना तो था, पर कुछ समझ मे नहीं आया। जाने कब और कैसे वह उतर आया था नीचे। गिरकर कजरी का शरीर छिन्न-भिन्न हो गया। सभी ने बम फेंकनेवाला उसे ही समझा! नीरद को अब समझ में आया कि कजरी ने उसे बचाने के लिए, स्वयं अपने को बलिदान कर दिया और...जब उसे होश आया तो जेल के अन्दर था। पुलिस ने सन्देह में उसे गिरत्फार कर लिया था।

मेजर अपने साथियों के सहित चिथड़ा-चिथड़ा हो गया था। कजरी के बलिदान ने उसके स्वर की ताकत ही छीन ली थी। मुकदमें के दौरान में लाख सर पटकने पर भी उसके मुँह से कोई आवाज नहीं निकल सकी। दिन-रात उसके समक्ष कजरी नाचती, उसके बलिदान की लपटें हर घड़ी झुलसाए रहतीं

मुक़दमा चलाया गया।

कई मुखबिरों ने झूठे-सच्चे बयान दिए और उसे आजीवन कारावास का दंड सुना दिया गया।

कजरी के बलिदान ने उसके शरीर की रक्षा करने का प्रबंध तो सोच लिया था; परन्तु मन•••शायद इस सम्बन्ध में उसने कुछ सोचा ही नहीं था।

उसका शरीर जी रहा था मगर मन का बलिदान तो कजरी के साथ ही हो चुका था।

जिस दिन उसे सजा सुनाई गई, उस दिन महिनों के बाद उसका पहली बार स्वर फूटा था—अट्टहास के रूप में।

● ●

समय का भागता हुआ मरहम हृदय के बड़े से बड़े घाव को एकदम नहीं तो बहुत कुछ सुखा देने की क्षमता रखता है। पाँच-सात महीने तक तो नीरद एक पागल की तरह जेल-जीवन का जायक़ा लेता रहा। खाना खाने के समय चुपचाप अपना 'तसला' आगे बढ़ा देता। काम करने के समय हाथ-पैर मशीन की भाँति सक्रिय हो उठते। कभी-कभी पक्कों और जेल के जमादारों के हाथ की खुजली का भी मुकाबला करना

पड़ता उसके शरीर को। सिधाई की सीमा जब पार होने लगती है तो वह मूर्खता की निशानी समझी जाने लगती है और मूर्ख के साथ नाजायज़ फ़ायदा उठाने वालों की कमी नहीं हुआ करती है, यह ज्ञान उसे रह नहीं गया था। वह जहाँ रहता है, वहाँ किसका शासन है—ज़ख्म की टीस ने उसके मानसपटल से इस मामूली और कॉमन अनुभव को भी मार भगाया था। पूछने पर वह शायद ही बता पाता कि उसकी जन्मभूमि का नाम भारत है, उसपर अंग्रेजों का राज्य है। बंगाल सरकार उसकी इस विक्षिप्तता से 'लम्बी तानने' के बदले और भी परेशान थी। उसकी आँखों में नीरद का भयावना व्यक्तित्व हमेशा गड़ता रहता। उसका यह पागलपन ढोंग के सिवा और कुछ नहीं, और उस ढोंग के आवरण में किसी भयानक षड़यंत्र की आग सुलग रही है अनुमान कर लेना अस्वाभाविक ही क्या था? उसने तो बहुत कोशिश की थी कि ऐसे भयानक आदमी को फाँसी के तख्ते पर ही झुला दिया जाय पर उसके अपने दिमाग की ही 'उपज' कानून ने हमेशा नीरद का साथ दिया। शक के अतिरिक्त उस पर और कोई भी अपराध प्रमाणित नहीं किया जा सका, फिर आजीवन कारावास वाला दंड, फाँसी से हलका भी तो नहीं हुआ करता। बंगाल में उसको अधिक दिनों तक न रख कर उसका अन्य प्रान्तों में 'ट्रांसफर' कर दिया गया।

पर इधर नीरद में आश्चर्यजनक परिवर्तन होने लगे हैं। मौन रहने की कोशिश कम करता है। रात-रात भर जाग कर आसमान की ओर देखते रहना, किसी को नहीं दीख पड़ता। अपने ऊपर शासन करने वालों की ओर निगाहों में ज्वाला लेकर देखना शुरू हो गया है। उसका दिमाग अब हमेशा तेजी से काम करने में दिन पर दिन समर्थ होता गया, होता गया।

"भाई!" साथ रहने वाले एक कैदी ने उसकी ओर बड़ी करुणा से निहारा—"आज तो मुझसे कुछ भी न हो पाया..."

"क्या बात!"

सहसा ही पूछ उठा। उस बेचारे को कभी विश्वास नहीं हुआ कि उसका यह गूँगा साथी भी बोलता है सो अचकचा उठा।

"तुम घबराओ नहीं ! कर दूँगा..." और अपने हिस्से का 'काम' निबटा कर वह उसकी ओर झुक गया—"यहाँ क्यों आए ?"

"भाई..."

"बोलो..."

"खून के जुर्म में...."

"तो खूनी हो ?" उसके मुँह से यों ही निकल गया।

"खूनी..."

"हाँ जी, किसका खून किया था ?"

"किसी का नहीं भाई..." कहते-कहते उसका स्वर काँप उठा, बड़ी तेजी से। आँखों में आँसू छलछला आए।

ठीक है !

दुनिया में न्याय-मूर्ति के रूप में मशहूर अँग्रेजों का कानून कितना थोथा है !

जो एकदम निरपराध है, वह भी जेल में और जिसने सदा नींव पर ही चोट पहुँचाई वह भी। अपने महीनों के जेल-जीवन में आज पहली बार नीरद को यह भान हुआ कि वह नौकरशाही-सत्ता का एक भयानक मेहमान बन कर जेल में है और अँग्रेजी-सत्ता अपने पूर्व रूप में ही जुल्म का नंगा नाच करती हुई जमी हुई है। उसे उखाड़ फेंकने का प्रण भी तो उसने किया था—हाँ ! हाँ !! हाँ !!! उसका रोम-रोम झनझना उठा। जाने कितनी देर तक हाथ सामने बटने के लिए पड़े सन पर स्थिर पड़े रहे। उसके इस खोयेपन पर वह बेचारा बड़ा घबड़ाया—भाई, क्या हो गया तुम्हें ?"

नीरद चौंका—"कुछ नहीं, कुछ नहीं !"

उसे विश्वास नहीं हो पाया। सोचने लगा, अवश्य ही अपने अप-

राघ की याद हो आई है इसे। पास ही कई 'पक्के' रखवाली के लिए खड़े थे इसलिए अधिक बात करने का मौका न मिला। दोनों अपने-अपने कार्य में लग गए।

नीरद के अन्तर की भूली-बिसरी हुई क्रान्ति याद हो आई।

क्रान्ति ! रात को कम्बल पर पड़ा तो मस्तिष्क बुरी तरह से उद्वेलित हो रहा था। न मालूम कहाँ-कहाँ का चक्कर काटते हुए उसे जेल में तीन साल के लगभग हो रहे थे। इन तीन सालों ने उसके अन्तर के विद्रोह को कुचलने मे कुछ भी उठा नहीं रखा था। मगर आज एकाएक जब मिटता हुआ विद्रोह सहसा ही पुनः उभर उठा तो वैकल्य के आवेग से हृदय बुरी तरह छटपटाने लगा।

कजरी !

कजरी की याद उसकी आँखों में आँसू ला देती थी पर आज कजरी याद आई तो उसकी आँखों की पुतलियाँ शोला बन गईं। लेटा-लेटा ही हुंकार कर उठा।

दादा के साथ बीते दिनों की स्मृति साकार हो उठी। जो अँग्रेज उनके नाममात्र से काँप जाया करते थे, वही आज सामने सीना तानकर खड़े होते हैं। परतंत्रता के पिंजड़े में बन्द होकर क्या वह इतना गिर गया है !

नहीं !

नीरद बदला नहीं है।

वही है, एकदम वही !

और उसी समय उसकी बन्द आँखों के समक्ष नाच उठा—दादा का वह रूप, जब बदन की बोटी-बोटी अलग करते समय भी अंग्रेजों के मन मे दहशत की लहर उठाई थी, अपने उपर शासन का आभास भी नहीं होने दिया—क्षण भर के लिए भी। उनकी बोटियों को उठवाकर फेंकवाते समय भी शायद सत्ता के नमकहलाल कुत्तों का मन दहशत से भरा हुआ था।

नीरद !

वही नीरद जिसे कभी-कभी दादा उत्साह में भरकर अपने से भी अधिक जीवट वाला घोषित कर देते थे—आज क्या से क्या बन कर रह गया है ! जिस भारत के लिए अपने शरीर का एक-एक बूँद लहू हँसते-हँसते निचोड़ फेंकने की आन हर घड़ी सीना ताने रहती थी, वही आज जेल में आकर यह भी भूल गया कि भारत उसकी अपनी जन्मभूमि है और है परतंत्रता के बन्धनों में जकड़ी—सिसकती-बिलखती ।

कजरी !

एकबारगी ही उसे पुनः रोमांच हो आया ।

क्या उससे प्यार करने लगा था ?—यह शंका उसे आज, कजरी के बलिदान के तीन साल बाद अनायास ही हो उठी ।

हाँ !

मन के कोने का कोई ज़रा हौले से चीख पड़ा । कसकीली उसाँसों का उमड़ता हुआ ज्वार और उसके कम्बल पर उठकर बैठ जाना, लगभग एक साथ ही ।

आस-पास उस जैसों अनेकों स्वप्न-संसार की मनोहारी सैर में तल्लीन थे—दीन-दुनिया की सुध को फुटबाल की भाँति उछालकर । मगर निमिष भर के लिए भी उसका ध्यान इस ओर मुड़ नहीं पाया ।

क्रान्ति और सेक्स, सेक्स और क्रान्ति—

अपने अगल-बगल बिखरी पड़ी मनहूसियत में टटोल उठी उसकी आँखें । मन चिन्तन के आगोश में झपकियाँ लेता रहा ।

दोनों का मिलना क्या कभी सम्भव है...

क्या जाने !

किसी से प्यार केवल सेक्सुअल तुष्टि के लिए तो किया नहीं जाता ।

मन को मोड़ने का प्रयत्न किया पर बेकार...

सेक्स जीवन का पूरक है और पूर्तिहीन जीवन, जीवन नहीं होता ।

दादा और भाभी !

उसका मस्तक घूम उठा ।

जीवन के इस 'पूरक' से परे न होकर भी, देश पर मर मिटनेवाली क्रान्ति, क्रान्ति की सहचरी बलिदान से मालामाल थे....

कजरी !

ओह !

कजरी का बलिदान उसे धिक्कारता-सा प्रतीत हुआ अपने आपको ।

वह इतना कमजोर, इतना निष्क्रिय हो उठा है—उफ् !

उसके ठंढे पड गए खून में आलोड़न हो उठा—एक दहकता हुआ-सा आलोड़न ।

और तब वह अपने को, अपनी निष्क्रियता को भस्म-सा होता हुआ पाया—उस भस्म की छितरा रही काया पर क्रान्ति का प्रज्वलन्त स्वरूप, अपनी सारी विराटता के साथ हुँकार कर रहा था ।

रात अपने को मात खाती देख, सबेरे की सुनहरी चादर में छुपने ही वाली थी ।

● ●

वर्षों बीत गए ।

१५ अगस्त सन् ४७ का ठुमकता सबेरा; सफेदे नहीं, तिरंगे परिधान में हँस पड़ा, मुस्करा पड़ा—चारो ओर उल्लास का सागर उमड़ उठा । परतंत्रता की घुटन, स्वतंत्रता की अलमस्ती में झूम-झूम उठी ।

नीरद ने वर्षों के पश्चात जब भारत की मिट्टी पर पैर रखा तो जाने क्यों उसका मन वितृष्णा से मरोड खा उठा । मिट्टी ने उसकी ओर आश्चर्य की दृष्टि डाली मगर उसने तब तक उस ओर से आँखें फिरा ली थीं ।

देश ने अपने वीरवर सेनानी का स्वागत उत्साहभरे हृदय से करना चाहा, पर उसने अरुचि से मुँह बिचका लिया।

भारत !

महादेश—

जिसने अपनी छाती पर युगों, सदियों से लहू का सागर लहरता देखा; पर कभी अपने कलेजे पर छुरी चलने की कल्पना भी नहीं कर पाया। मगर आज वह बिलख रहा था इसलिए कि उसके ही पुत्रों ने उसकी छाती पर आरी चलाकर उसे टूक-टूक करके रख दिया। राम-राज्य और महाभारत से लेकर मुगलों तक के युग ने, जिसकी छाती का लोहा मानकर सजाने सँवारने के साथ ही लहू का सिंचन करने में कोई कोर कसर नहीं छोड़ी, परन्तु उसके लौह-हृदय ने लहू की धार को भी दूध के सागर में खपा लिया और ज्यों का त्यो बना रहा। 'डाकुओं' ने अनेकों बार उसे कंगाल कर देने की योजनाएँ बनाईं मगर फिर भी वह मालदार बना रहा—वही भारत सफेद चमड़ी के अन्दर काला दिल छिपाए अंग्रेजों के द्वारा चिथड़े-चिथड़े में विभक्त होकर रह गया और...

"नीरद भाई !" सहसा किसी ने उसको अपने में सिमटा लिया आकर।

"कौन !"

"मुझे नहीं पहचानते, भूल गए !"

"मैं किसी को नहीं पहचानता..." अपने आप में डूबे हुए उसने निगाह उठाकर देखा भी नहीं।

"मैं हूँ...राम...."

"राम..."

"हाँ, वही राम..."

चौंक कर देखा। देखता रह गया।

"पं० नेहरू आप से मिलना चाहते हैं..."

अपने सामने शुद्ध मगर वैभव की गवाही देते हुए खादी के कपड़ों में राम बाबू को पाकर उसे तनिक भी आश्चर्य नहीं हुआ।

"हूँ, कोई आवश्यकता नहीं रामबाबू...भारत की इस आजादी का मुबारकबाद उन्हें शायद नहीं दे पाऊँ ..."

"नीरद भाई !..."

मगर उनके लाख प्रयत्न पर भी वह पण्डित नेहरू के पास जाने को तैयार नहीं हुआ।

राम बाबू तब दिल्ली में ही रहने लगे थे। भारत के 'भाग्य-विधाताओं' में उनकी भी गिनती होने लगी थी।

"रामबाबू !"

उसके स्वर की गम्भीरता ने रामबाबू को सहमा-सा दिया—"नीरद भाई...."

"मेरा काम खत्म हो गया न, क्यों !"

उसके इस बेढंगे प्रश्न का सहसा कुछ मतलब नहीं लगा सके वे।

"बोलिए...."

"अब..."

वह ठहाका लगा उठा।

"यही तो देखना है रामबाबू..."

रामबाबू चक्कर में पड़ गए। पहेली उनके लिए एकदम अबूझ थी।

* * * *

दो साल हो गये। बहुत चाह कर भी नीरद रामबाबू से पीछा नहीं छुड़ा पाया। मस्तिष्क में कभी तुमुल कोलाहल छा जाता आजाद भारत की दशा देख, पर करता भी क्या ? रामबाबू धारा-सभा के मेम्बर चुन लिए गये थे। उसका विद्रोही मन, स्वार्थ-लिप्सा में डूबे जन-नायकों को देखता और हाहाकार में डूब कर रह जाता।

"नीरद बाबू !"

अभी-अभी सोकर उठा था, हाथ में चाय की प्याली लिए छाया को देखकर चौंक पड़ा—"भाभी..."

"क्या सोचा करते हैं आप दिन रात !"

"भाभी, मैं खुद नहीं जानता...राम भाई उठ गए क्या !..." घबराया-सा वह कह गया। उसके हाथों में चाय की प्याली थमा कर छाया, पास की कुर्सी पर बैठ गई।

नीरद चाय से उठती भाप की लहर में खो गया।

"वे तो भिनसारे ही उठ कर कहीं चले गये..." कह कर उसने बड़ी करुण दृष्टि नीरद पर डाली—"आजकल वे किसी दूसरे ही चक्कर में पड़े रहते हैं—" अनायास ही उसके मुँह से निकल गया।

"चक्कर ?...कैसा चक्कर ?"

छाया घबरा कर रह गई।

नीरद ने देखा—उसके मस्तक पर पसीने की बूँदें चुहचुहा आई थी।

तभी बाहर के दरवाजे की घण्टी घनघना उठी। पर नीरद और छाया को कुछ मालूम ही नहीं हुआ।

नौकर ने दरवाजा खोल दिया।

"रामबाबू कहाँ हैं ?" दरवाजे पर एक अमेरिकन युवती खड़ी थी। छाया का चेहरा तमतमा उठा।

नीरद सम्हल कर बैठ गया।

"नहीं हैं !"

"कहाँ गया।"

"कह नहीं सकती..." और उसने जल्दी से उठ कर बैठक का दरवाजा बन्द कर दिया।

गुस्से से पैर पटकती हुई वह चली गई।

छाया बड़ी जोर से हाँफने लगी थी।

"भाभी..." नीरद घबरा उठा।

"कुछ नहीं नीरद बाबू, कुछ नहीं..." कहती हुई वह तेजी से दरवाजा खोल कर बाहर निकल गई। नीरद हत्बुद्धि-सा बना रहा....

● ●

उफ्!

नीरद पागलों की तरह सर के बाल नोचने लगा। राजघाट पर बैठे बैठे उसे पाँच-सात घण्टे हो गये थे।

सामने ही बापू की समाधि थी, पुष्प मालाओं से आच्छादित, मानवता के ओज से देदीप्यमान। धीरे-धीरे वह वहीं पड़े पत्थर पर लेट गया। पलकें अपने आप ढँक गयीं। आज सुबह ही तो—

सोकर उठा ही था कि बगल के कमरे से उस दिन वाली अमेरिकन युवती की आवाज सुनाई पड़ी। कान खड़े हो गये।

"तो ठीक!..."

"हाँ-हाँ, मेरा अखबार कुछ भी उठा नहीं रखेगा....पर...आप लोग अपना वादा..."

"अमेरिका अपने वादे से कभी मुकरेगा नहीं रामबाबू....आप... और फिर..."

"धीरे-धीरे....बगल" रामबाबू का शंकित स्वर था।

"आज दस्तखत कर ही दो..."

"नहीं अच्छा-अच्छा..." फिर बहुत धीमे स्वर में बातें होने लगी। सब तो नहीं सुन पाया पर उखड़ी-पुखड़ी बातों ने ही उसे थर्रा दिया। भारत में अमेरिकी-जाल के फैलाव में रामबाबू और उनका अखबार सहयोग देंगे शक्ति भर और इसके लिए काफी रक़म...अमेरिका धीरे-धीरे भारत पर हॉबी हो जाय और...इसके आगे कुछ सुन सकने की ताब नहीं रही उसमें।

लिप्सा का वह ताण्डव-नर्तन...घबरा कर उसने सामने बापू की समाधि की ओर निहारा।

बापू!

यही है तुम्हारे सपनों का महल?

मन का आलोड़न तड़प उठा।

और अब तो बापू की समाधि की ओर देखने की भी इच्छा नहीं हो रही थी उसे।

उठ कर खड़ा हो गया।

पैर बुरी तरह लड़खड़ा रहे थे।

आँखों में कभी आवेश की ज्वाला जल उठती और कभी वह लपटें उगलने लगती।

घाट से ऊपर आकर सड़क, सड़क से उठकर दृष्टि आस-पास के वातावरण पर अटक गई—उसे महसूस हुआ, उन सबसे कराह फूटी पड रही हो, घुटी हुई-सी कराह!—भारत की आजादी आँखों में चुभन भरने लगी, आत्मा काँप-काँपकर रह गई। क्या आजादी के इसी रूप के लिए जाने कितनों ने अपना बलिदान किया था? क्या आजादी के जिस सपने को सँजोए रखने के लिए अपने लहू की एक-एक बूँद लगा देने वाले पागल थे? क्या कभी वन्दिनी भारत माँ को सुराज का नारा बुलन्द करने वाले अपने लाड़लों के प्रति यह सोचने का मौका मिल सका होगा कि उनकी बन्धन-मुक्ति का सौदा भी किया जाएगा?—सौदा! यह सौदा ही तो हुआ—आत्मा की सिरहन बढ़ती ही गई। बन्दिनी माँ के चरणों में पड़ी बेड़ियों की एक-एक झनकार के लिए कभी खून की नदी बहा देने को दृढ़-संकल्प, उसके लहू में इतनी मन्दता आ गई है कि जार-जार रोते हुए भारत के बीच भी अपने आपको...

नहीं!—हृदय-आलोड़न ने कसमसा कर अँगड़ाई ली—नीरद! मरा नहीं, उसके लहू में मन्दता नहीं—वह भारत, अपने स्वप्न के इस अभाग्य

मे आग लगा देगा, आग...आवेग बहकता ही रहा। आँखें न चाहकर भी अगल-बगल के फुटपाथों की ओर मुड़ गईं—शरणार्थी-परिवारों के बीच होता दैन्य का रौरव-नर्त्तन मन में हूक बनकर उतर गया।

पंजाब !

यही भगत सिंह का पंजाब है ?

नाक पर तिरंगा लहराती हुई भारत के भाग्यविधाताओं की चमचमाती हुई कारें, उसका मजाक-सा उड़ा, धूल का अम्बार उड़ाती हुई सरसरा जातीं।

दाँत पीसकर रह जाता।

उसे हो क्या गया है !

पागल तो नहीं हो गया !

पागलपन ही तो है यह कि सन् ५० को २४-२५ समझ लेने की भावना उठ पड़ती है...इन कारों को ठीक उसी तरह बम से उड़ा देने की इच्छा जोर मारने लगती है, जिस भाँति कभी मेजर जेम्स...उसकी आत्मा मे यह लहू की प्यास कैसी उमडी आ रही है...लहू की प्यास....

"बाबू जी अंगूर !" अचकचा कर देखा, सामने छोटी-सी टोकरी मे अँगूर के गुच्छे लिए एक सुकुमार पंजाबी बालक आँखों में आशा का झिलमिलाता दीप सँजोये उसकी ओर निहार रहा था। जाने क्यों उस सुकुमार का गला टीप देने को हाथ चंचल हो उठे। घूर-घूर कर देखने लगा—भगत सिंह के पंजाब का खून—आजाद भारत का यह नन्हाँ नागरिक, जीने का मर्म भी भला क्या समझेगा और जिसे जीने का मर्म ही नहीं मालूम, वह जीवित भी क्यों रहे ? होठों के कम्पन से जैसे फूट पड़ा—भारत के उन वीर पुत्रों का लहू समेट कर दैन्य की दुनिया में विचरने वालों को जीने का कोई हक नहीं...

"बाबू !" बेचारा सहम कर बोल उठा। विचार-प्रवाह को झटका-

सा लगा और तब बालक की विस्फारित आँखों ने देखा, बाबू आगे बढ़ गये थे।

गिरते-गिरते बचा। बगल से भागती हुई कार का हलका-सा झटका लग गया था। मुड़ कर देखा—कार दृष्टि से ओझल हो चुकी थी।

तभी पास ही से कोई कह उठा—

"पं० नेहरू थे!"

पं० नेहरू!

आजाद भारत के आजाद प्रधान मन्त्री!!

धीरे से अपने को फुटपाथ पर कर लिया, विद्युत प्रकाश से झिलमिलाती हुई दिल्ली एकदम अंधकारपूर्ण लगने लगी थी उसे...पर ऐसा क्यों!—लड़खड़ाते क़दमों से एक बन्द दूकान के चबूतरे पर आकर बैठ रहा—आँखों के सामने फैलता जा रहा अन्धकार अब और भी गहन हो गया था। भारत आजाद था मगर वह अपने मन को गुलाम पा रहा था—ठीक वैसी ही गुलामी, जैसी आज से पन्द्रह-बीस वर्ष पूर्व थी, कसकती, झकझोरती। मस्तिष्क के तार-तार झंझावती-लय में थिरकने लगे थे। भारत उसे श्मशान-सा वीरान और मनहूस लग रहा था। अँग्रेजों के खूनी शिकंजे से छूट कर भारत सचमुच भारत बन जाने वाली कल्पनायें, भयानक रूप से उद्वेलित करने लगीं...उद्वेलन बढ़ता ही गया, आँखों में अन्धकार की छाया गहन होती गई, दिल्ली उसे काट खाने को दौड़ने लगी थी....

साइमन कमीशन!

लाला जी का बलिदान!

भागता हुआ-सा मस्तिष्क स्मृतियों के गर्त में गिर पड़ा।

मुँह से उसके एक ठंढी साँस निकल गई।

तब वह पंजाब में ही था।

जेल के अन्दर घुट रहे उसके क्रान्तिकारी, विद्रोही अन्तर की लपटें

अब एकदम आज़ाद थीं। बंगाल के विद्रोही अंगारे पर पड़ गई राख यू० पी० और पंजाब में चिनगारी बनकर छिटकने लगी थी। 'आज़ाद' के दल ने पता लगते ही किसी न किसी तरह से उसे मुक्त करके ही छोड़ा। साथियों की योजनायें तीव्रता से काम कर रही थीं। दादा के सम्पर्क में उसने बम बनाने का फारमूला जान-समझ लिया था। आज़ाद को यह बात बहुत पहले से ही मालूम थी, दादा के द्वारा। उसके अन्तर का विद्रोह, नूतन सजगता के साथ संलग्न हो।

मगर....

साइमन कमीशन की लहर उठी और विलीन हो गई, लालाजी का बलिदान भी दब-पिसकर रह गया। क्रान्तिकारियों का भविष्य क्रमशः राहुग्रस्त होने लगा।

एकाएक बम बनाते समय हुए एक विस्फोट मे कुछ साथियों के साथ वह पुनः गिरफ्तार कर लिया गया और फिर तो जैसे धीरे-धीरे क्रान्तिकारियों का नाम ही मिटने लगा...पंजाब में भगतसिंह सुखदेव.... काकोरी कांड के साथी....और फिर बाद में इलाहाबाद के अलफ्रेड पार्क में चन्द्रशेखर 'आज़ाद'....सब कुछ...सब कुछ....

उसका सारा उत्साह ही खत्म होकर रह गया। मुकदमा उसके ऊपर भी चला पर बहुत कोशिश करने पर भी वह अपने लिए फाँसी की व्यवस्था नहीं करा सका।

नौकरशाही-सत्ता उसे इतने सस्ते में छोड़नेवाली नहीं थी शायद। नहीं तो सचमुच अपने लिए फाँसी माँगनेवाला...आत्महत्या का विचार कई बार आया पर अन्तर ने उस कायरतापूर्ण मौत को कभी स्वीकार नहीं किया और...सड़ता रहा, सड़ता रहा। जेलवालों ने बहुत शीघ्र ही उसे विक्षिप्त करार दिया और वह जबरदस्ती पागलखाने में ठूँस दिया गया। कांग्रेस की अस्थायी मिनिस्ट्रियाँ प्रांतों में अस्थापित हुईं...सभी राजनैतिक बन्दी मुक्त कर दिये गए मगर वह इसके बहुत पहले ही एक

मुखबिर की 'कृपा' से पागलखाने से दूसरे, एकदम नये सिरे से चलने वाले मुकदमें में खींच लाया गया उसे....उसने अपने ऊपर लगाए गए सारे अभियोगों को स्वीकार कर लिया और तब सन्तोष की निगाह से अपने मुकदमें के भविष्य की ओर देखा—फाँसी रखी गई थी। अब उसे किसी प्रकार का उत्साह नहीं रह गया था—मन बलिदान की कल्पना-मात्र से उमग उठा। पर...होना कुछ और ही था। जाने किस कोने से उसकी एक मौसी प्रकट हो उठीं! विधवा थीं, संपत्ति काफी थी—सो उन्होंने अपने वारिस को छुड़ाने में तिजोरी के पल्ले खोल दिए। मगर उन्हें निराश होना पड़ा और उसकी सज़ा फाँसी से 'बढ़ाकर' कालेपानी में बदल दी गई। सुनकर उसे गश आ गया था...मातृभूमि से दूर होने की कल्पनामात्र से मन काँप उठा उसका, दीवार से सर टकराकर भुर्ता बना लिया पर...

स्मृतियों की तूफानी गति ने देखते ही देखते बीस साल की लम्बी मंजिल पार कर ली। एक झटके के साथ उसकी ढँपी हुई पलकें खुल गईं। स्मृतियों में खोया मन, अपने को पुनः 'आजाद-दिल्ली' के बीच पाकर तड़प उठा। स्मृतियों की तूफानी-झंझा में हूक बनकर समाई, कजरी की कुर्बानी उमगी जरूर थी; परन्तु फिर तुरन्त ही जब, तन-मन में उठ पड़ी विद्रोह की चिनगारी ने छिटककर उसे अपने आप में समेट लेना चाहा तो उसने कोई इनकार नहीं करना चाहा, चुपचाप दूध-पानी-सी घुलकर रह गई। भूखे बाघ की तरह उसकी आँखें अपने आस-पास फैल गईं, फैलती गईं।

जाने कब पटरे से उतरकर चलने लगा और चलता हुआ अनजाने से ही जब उसके पैर रामबाबू के बँगले के सामने रुके तो रात के ग्यारह बज रहे थे।

रामबाबू!

उसके शरीर से जैसे बिजली का नंगा तार स्पर्श कर गया। पाँच-सात कदम पीछे हट गया, एकबारगी ही।

धोखेबाज !

मातृ-घातक !!

होठों को दाँतों ने दबोच लिया और—वह दो सालों से एक मातृ-घातक की रोटियों पर गुजारा कर रहा है—उफ् ! क्या हो गया था उसे।

बँगले के पास ही एक बड़ा-सा बरगद का पेड़ था; वहाँ मोमबत्ती का प्रकाश होता हुआ देख, सहसा ही चौंक पड़ा। क़दम लड़खड़ाये मगर उस ओर बढ़ चले। दस-बारह के एक बालक के साथ कोई तरुणी, पेड के तले से पीठ टिकाए ऊँघ रही थी! आस पास काफ़ी अन्धेरा था; इसलिए एक पतली-सी मोमबत्ती जला दी गई थी। अन्तर्द्वन्द्व मे पिसता-प्रताड़ित होने पर भी नीरद को औत्सुक्य मे डूब जाना पड़ा। कुछ और पास आकर खड़ा हो गया। तरुणी कोई साधारण गृहस्थ मालूम पड़ती थी। तरुण्य के ओज से बहुत कुछ रिक्त उसका शरीर, असमय मे ही कुम्हला गए प्रसून-सा जमीन पर बिखरा हुआ था। रात के ग्यारह बजे, इस तरह से अँधेरे मे बैठना रहस्यमय लगा नीदर को। उसके पैरों की आवाज सुनकर वह सम्हल कर बैठ गई। नींद भरी आँखों में आशका तिलमिला उठी तत्क्षण—उसने कुछ कहने के लिये मुँह खोला ही था कि नीरद पूछ उठा—"कौन हो !" स्वर बहुत प्रयत्न करने पर भी मृदु नहीं हो पाया।

एकबार उसकी सहमी हुई निगाह आस पास नाच उठी, अपने को एकदम अकेली और अरक्षित अवस्था में पाकर जैसे उसका मन काँप गया हो—ऐसा आभास नीरद को लगा। वह भौचक्की-सी उसकी ओर निहारने लगी—"आप..."

"डरो नहीं...बताओ, कहाँ से आ रही हो ?"

वह कुछ आश्वस्त-सी हो गई। बोली—"बनारस से।"

"बनारस से ?"

"हाँ !"

"अकेली हो ?" नीरद को उसके प्रति बड़ी दिलचस्पी हो आई—"यहाँ !..."

"रामबाबू....यहाँ कोई रहते हैं ?...."

"बनारस के ?"

"हाँ-हाँ, कांगरेस के बड़े भारी मियम्बर..."

नीरद क्षण प्रति क्षण आश्चर्य में डूबा जा रहा था—"हाँ, क्या काम है उनसे ?"

वह हड़बड़ाकर उठ बैठी, फक्क पड़ा चेहरा किंचित खिल उठा—"कहाँ बाबू....मैं बड़ी परेशान हूँ, दोपहर हो से खोज रही हूँ..."

"बोलो भी तो...."

"उनसे मिलना है बाबू कांग्रेसी राज में मुझ विधवा..."कहते-कहते वह रुक गई। आँख के साथ ही स्वर भी आँसुओं में भींग गया-सा लगता था—"बाबू, क्या जितने सुराजी हैं, सबके सब बेईमान हैं?..."

"बेईमान....क्या कहती हो !"

वह तड़प-सी उठी, लगता था आँसुओं में भींगे स्वर को अन्तर की ज्वाला ने शोले की तरह भड़का दिया हो—"मैं ठीक कहती हूँ, जितने सुराजी गाँधी टोपी वाले हैं, गरीबों का खून पी-पीकर....राम बाबू ने बनारस में मेरा मकान, जो उनके यहाँ बन्धक रखा हुआ था अपने घर में मिलवा लिया...हमने उनका रुपया देकर मकान लेने की मिन्नत की तो बेईमानी पर उतर आये....बाबू, मेरा आदमी मुकदमा लड़ते-लड़ते मुझे छोड़कर चला गया पर सुराज सुराज चिल्लाने वाले इस बेइमान को तनिक भी दया नहीं आई...दीवानी और मुँसफी से हारते हुए भी अब हाई-कोर्ट में अपील...आप ही बतायें बाबू, मुझ विधवा में इतनी ताब....

वे सरकार बन गये हैं...और मैं तो कहती हूँ कि बेईमानों से भरी हुई यह सरकार थोड़े ही दिन में..."

"कहती क्या हो ?" नीरद के पैर बुरी तरह से थर्रा गए।

"विश्वास नहीं आ रहा है आपको बाबू मगर..." कहते-कहते उसका आवेग मंद-सा हो गया—"बनारस से दिल्ली इसलिए आई थी ...लोगों ने कहा था नेहरू जी से रोने-गाने से शायद कुछ हो जाय..." बातचीत से गँवारापन तो टपक रहा था पर उसमे ओज की कमी न थी। उसके साहस से चमत्कृत हो उठा नीरद।

आश्चर्य के गहरे सागर में डूबा नीरद कुछ मिनट एकदम मौन मे उभ-चुभ करता रह गया। यह सब क्या हो गया, क्या हो रहा है ?—उसकी कुछ समझ में नहीं आ रहा था। उसके साथ का बालक भी जाग गया था और चुपचाप उसकी ओर चकित-सा, भीत-सा निहार रहा था। उसके मौन से तरुणी घबरा उठी। अपनी परिस्थिति पर उसका सहज तरल नारीत्व एकबारगी ही अशंका से भर उठा !

"बाबू जी !"

"ओह, तो तुम बनारस से एकदम अकेली आई हो ?" सहसा ही नीरद चौंक पड़ा। तरुणी की घबराहट छिपी नहीं रही उससे। अपने आवेग को रोक पाने मे जाने कैसे सफलता मिल गई थी। स्वर उसका स्वाभाविकता से अधिक दूर नहीं था—"नेहरू जी नहीं मिले न ?"

"नहीं बाबू जी, उनसे भेंट ही न हो सकी। मोटर पर आए तो जरूर पर...चिल्लाती रह गई...वैसे बनारस में उनसे अपना दुखड़ा सुना चुकी हूँ...मगर अब पहले वाले नेहरू कहाँ रहे बाबू..." लम्बे उच्छ्वास के पास जैसे उसके अन्तर की घुमड़ती वेदना छलक रही थी।

नीरद को जैसे किसी ने बिजली के हंटर से मार दिया। अन्तर की पीड़ा ने उसके फेफड़े में सुई चुभो कर रख दी।

"नहीं, सो बात नहीं..." जल्दी से उसके मुँह से निकल गया—

"अब उनके ऊपर बहुत सारी जिम्मेदारियाँ भी तो आ गई हैं..." कहकर दूसरी ओर देखने लगा; मन के 'चोर' को शंका हो उठी कि कहीं उसकी इस बनावटी बात का 'मुलम्मा' भाँप न ले वह। जल्दी से घूम पड़ा—"तुम घबराओ नहीं; मैं रामबाबू को समझाऊँगा—वे मेरे दोस्त हैं... आओ तो..." कहकर वह चलने लगा।

सुनते ही वह उसके पैरों पर गिर पड़ी—"बाबू, आप मेरे लिए भगवान बन जाँय....मुझ अभागिन विधवा का इस छोटे भाई के सिवा और कोई नहीं। रामबाबू और हमारा मुकाबला पहले भी नहीं था अब तो..." और अनायास ही उसके मुँह से अपने असमय वैधव्य की कठोरता पर एक आह निकल गई—"आप ही सोचें बाबू, हाईकोर्ट में...मुझ जैसी...रामबाबू को मेरी जैसी झोपड़िया...उनको कमी ही किस बात की है..." वह सिसकने लगी। करुणा के उद्रेग से विचलित-सा हो गया नीरद। किसी तरह उसे दिलासा देकर उठाया और रामबाबू के बँगले की ओर बढ़ा। बच्चे का हाथ पकड़े तरुणी उसके पीछे थी।

बारह बज रहे थे मगर रामबाबू की बैठक चहक रही थी। नीरद की चलती हुई निगाहों ने देखा—उस अमेरिकन युवती के साथ ही कई अमेरिकन पुरुषों का भी जमघट लगा हुआ था। 'खाने-पीने' का दौर चल रहा था, पूरी तेजी के साथ। उसकी आँखों में लाल डोरे छलक कर रह गए, जैसे तप्त तवे पर पानी की बूँदें छनछना उठी हों। उसे देखते ही रामबाबू लपक से उठे—"ओह, नीरद भाई, प्रतीक्षा करते-करते थक गया, जाने कहाँ-कहाँ की चक्कर काटते रहते हो!...मेहनत और पसीने का जमाना बीत गया। अब तो अपना देश आजाद है...मौज-मस्ती के दिन...मगर आप हजरत हैं कि उसी खब्तुलहवासी में पड़े रहते हैं..." वे इतना सब एक ही साँस में कह गए। नीरद गंभीर बना दरवाजे के पास ही खड़ा रह गया। आवेश से उसकी आँखों की लाली और गहरी हो उठी थी। उसके आ जाने से महफिल की रंगीनी फक्क-सी पड़ गई।

रामबाबू उसकी ओर आश्चर्य से देखने लगे। नीरद ने अनुभव किया, अत्यधिक मदिरापान से उन्हें उस तरह खड़े होने मे असुविधा हो रही है।

"नीरद भाई!"

"रामबाबू बहुत आवश्यक काम है...कुछ मिनट के लिए..."

वे ठठाकर हँस पड़े—"काम...नीरद भाई, कितनी बार कहा कि जमाना काफी आगे बढ़ चुका है। परेशानी के दिन खत्म हो चुके... अब तो मौज-मस्ती और कुछ नहीं...चले आओ, इन लोगों से आपका परिचय करा दूँ..."

"नहीं!" वह गरज-सा उठा।

रामबाबू सहम गए।

तभी उसने सुना, वह अमेरिकन युवती कह रही थी—

"जानवर मालूम पड़ता है मूँजी...देखकर जाने क्यों भय मालूम होने लगता है..." अंग्रेजी में कहा गया अपने प्रति वह अपमानजनक 'रिमार्क' नीरद के कलेजे में धँस कर रह गया, मगर अपने मन को जब्त करके रह गया—जैसे कुछ सुना ही न हो। वहाँ अधिक देर टिकना उसके लिए असंभव-सा लगने लगा था।

"रामबाबू!"

इस बार उसने कुछ इस गंभीरता से कहा कि रामबाबू का सारा नशा हिरन होकर रह गया। नीरद से वे अब भी आतंकित-से रहा करते थे—पर जितना ही आतंक होता था, उससे कम उसका आदर करने की भावना भी नहीं होती थी। जाने क्यों यह सब होता था! बहुत प्रयत्न करने पर भी उनकी समझ में कुछ नहीं आता।

जब नीरद ने उनकी कलाई पकड़ कर अपनी ओर खींची तो डोर में बँधी पतंग की भाँति खिंच आए।

"क्या बात है नीरद भाई?"

"बनारस से कोई मिलने आया है।"

"बनारस से ?"

"हाँ, कोई औरत..." नीरद अपने को एकदम शान्त बनाए था।

"औरत ?" वे और चकराये।

"हाँ, शायद आप उसे जानते भी हैं, अच्छी तरह जानते हैं रामबाबू..."

"कौन..."

"कोई गुलाब देवी है..."

"गुलाब !" वे बुरी तरह चौंके।

नीरद को कोई आश्चर्य नहीं हुआ, पूर्ववत गंभीर बना रहा।

"नहीं जानते ?"

"पर..."

"पर आपको ऐसी आशा नहीं रही होगी—है न ?"

रामबाबू के मन में अचानक ही सिहरन दौड़ गई।

नीरद को मुद्रा पर छा जाने वाली उनकी घबराहट को पढ़ने में कोई दिक्कत नहीं उठानी पडी।

उसे वह आते समय नीचे की दालान में ही बिठाता आया था।

"राम बाबू !..."

"नीरद..."

"मुझे आशा नहीं थी..."

"क्या ?"

"यही कि..." कहते-कहते वह रुका—"कि आप लोग भारत की आजादी को इस रूप में ग्रहण करेंगे।"

"मैं..."

"ठीक है, ठीक है..." नीरद उनके साथ छ-सात डंडे की सीढ़ियाँ पार करने लगा। दालान में सीढ़ियों की ओर आकुल निगाह लगाये गुलाब खड़ी थी।

रामबाबू को देखते ही उसकी मुद्रा पर हौल-से घृणा खेल गई। परन्तु स्तब्ध-सी बनी उनकी ओर निहारती रही—मौन।

"तू...यहाँ..."

तरुणी ने नीरद की ओर देखा।

"रामबाबू"...वह कहने लगा—"आपको शायद मालूम नहीं कि बेचारी विधवा हो गई"...कुछ देर रुक कर उनकी मुद्रा का अध्ययन करता रहा, फिर—"जो भी हो, आपको ऐसा नहीं करना चाहिये था, रामबाबू..."

"नीरद भाई, आप कुछ समझते तो हैं नहीं!"

"समझ चुका हूँ रामबाबू!" उसके स्वर में इतना वजन था कि वे धक से रह गए।

कुछ देर मौन छाया रहा।

"यह बदमाश है..."

"चुप रहिए..."

"......."

"रामबाबू!"

रामबाबू का चेहरा तमतमा उठा—"दूसरों के सामने मेरा अपमान...आइये, चलिये...सुबह बातें करूँगा इस पर..."

"सुबह, इस समय नहीं?"

"हाँ!"

नीरद कुछ देर सोचता-सा रहा। तरुणी की आँखों में आशंका नाच उठी।

"ठीक है, तुम यहीं रहो..." कह कर वह सीढ़ियों की ओर मुड़ गया। रामबाबू पहले ही ऊपर चले गये थे। नीरद चुपचाप अपने कमरे में आकर पड़ रहा। बगल के कमरे से रामबाबू की मंडली के गुलछर्रे स्पष्ट सुनाई पड़ रहे थे। उसे नींद नहीं आ रही थी। उठकर खिड़की के सामने

आ रहा। कुछ नमी लिये हवा का एक झोंका आया और चला गया, पर नीरद के खोएपन पर उसका रंचिक भी असर नहीं पड़ सका।

राम बाबू !

उनका पतन !!

तो क्या भारत के सभी भाग्य-विधाता इसी रंग में 'रंगीन' बने होंगे।

अवश्य।

मन का विश्वास दहाड़-सा उठा।

आज़ाद भारत !

बापू का राम-राज्य !...

कुछ दिनों पूर्व बापू ने जब शहादत की नींद लेने के लिए लम्बी तान ली थी तो उनके प्रति मन में सहानुभूति आकर भी नहीं आ पाई थी और आज...

मस्तिष्क जाने कब तक बहकता रहता कि पीछे से छाया की आवाज़ सुनाई पड़ी—"नीरद बाबू, क्या देख रहे हैं....खाना नहीं खाया..."

"भाभी..." पलट पड़ा वह।

छाया उसके पास आकर खड़ी हो गई।

नीरद ने चौंककर देखा, उसके कपोलों पर आँसुओं की लकीरें पड़ी हुई थीं—कुछ सूखी, कुछ गीली।

उसका हृदय कारुण्य से भर उठा।

"भाभी !..."

"नीरद बाबू !"

"तुम रो रही थी ?"

"और रह भी क्या गया है, मुझ अभागिन के लिए। नारी की बेबस जिन्दगी के लिये यह आँसू ही तो हमदर्द हुआ करते हैं....नारी के आँसुओं की शक्ति की दुहाई हमेशा दी जाती है मगर इस पर शायद ही कोई

ध्यान दे पाता है, आँसुओं, वह भी नारी के आँसुओ में शक्ति की कल्पना, मात्र कवियों की-सी भाषा के शब्द-कोश की चीज़ है...उसकी वास्तविक शक्ति का अनुभव तो भुक्तभोगी ही कर सकता है नीरद बाबू..."

"ऐसा क्यों कहती हो भाभी !" छाया की विह्वलता ने नीरद को बुरी तरह चौंकाया और चौंकने के बाद ही जैसे उसे कुछ याद हो आया—"भाभी रामभाई के पतन का कारण बतला सकती हो..."

"पतन !..."

"हाँ !" वह बड़ी आतुरता के साथ उसकी ओर निहारने लगा।

छाया का शरीर एकबार बड़ी जोर से झनझना उठा। नीरद के स्वर में जाने कैसा आकर्षण था कि बरबस ही उसका फेफड़ा कलेजा फाड़कर बाहर निकला आ रहा था—"नीरद बाबू....आप लोगों के सम्पर्क में आकर उनका बलिदान मैं भले ही स्वीकार कर लेती—वैधव्य की चोट खाकर भी मगर...यह रूप...मुझसे सहन नहीं होता यह सब...एक ओर आप जैसों का लहू और दूसरी ओर स्वार्थ की आँधी में बहने वाले इन... इसका कोई कारण मेरी समझ में नहीं आता नीरद बाबू....कोई नहीं... गाँधी जी की बची-खुची मानवता उन्हीं के साथ चली गई...स्वार्थ से अन्धे हुए दानवों के हाथ में पड़कर सब कुछ चौपट होकर रह जायगा....सब कुछ...इनमें कोई आश्चर्य नहीं कि कोटि-कोटि की आत्मा का प्रतीक भारत किसी भी दिन लिप्सा के हाथों बेमोल बिक जाए...उफ् !" कहकर दोनों हाथों से उसने अपना मस्तक पकड़ लिया। नीरद प्रस्तर-मूर्ति-सा बना जहाँ का तहाँ खड़ा रह गया, उसमें इतनी चेतना नहीं रह गई थी कि भावनाओं में बही जा रही छाया को थोड़ा-सा सहारा दे दे—वह तो अपने आप ही उड़ा जा रहा था भावना के तूफान में, सूखे पत्ते सा छाया की काँपती हुई आवाज अब भी उसके कानों में पिघले सीसे की तरह पड़ रही थी—"नीरद बाबू...अगर तुम्हारे हृदय में मानवता की तनिक भी मात्रा शेष हो तो अपने हाथों से मेरा गला..."

नीरद के मस्तिष्क में तब की छाया कौंध रही थी, जब...उसे रोमाँच हो आया । इन बीते हुए दो सालों में छाया के मानवी-हृदय, मधुर व्यक्तित्व एवं ममत्वमय सम्पर्क का सहारा न मिला होता तो वह शायद ही कभी अपने आप को जीवित, थोड़ा शान्त मगर बहुत उभ्रद्रान्त, इतने पापमय वातावरण के बीच ठेलने में कभी समर्थ हो पाता—अपने सँजोए हुए स्वप्न भारत की इतनी दुर्दशा देख, या तो खुद को आग लगा देता या उसके सजग-व्यथित आहत हो गए 'क्रान्तिकारी' के हाथों इन सारी व्यवस्थाओं में ही आग लग गई होता ।

"नीरद बाबू !" तभी छाया ने आकर उसे झकझोर दिया ।

चिन्तन मे डूबा मन, एकबारगी ही सम्हलकर स्वाभाविक स्थिति मे आने का प्रयत्न करने लगा । अपने आप में, अन्तर के कोने-कोने में उस ज्वाला से कहीं अधिक दाहकता की अनुभूति मिल रही थी, जब दादा, भाभी और शिव की निर्मम-नृशंस हत्या ने...और होती भी क्यों न !—इसबार तो उसके सामने अपने भारत की लाश सामने आ पड़ी थी—उस भारत की लाश जिसकी एक-एक धड़कन में, हजार-हजार हृदयों का लहू निछावर होने को तत्पर रहा है । झटका-सा लगा और झटके की शिकन चौरस होते न होते उसके शरीर का एक-एक अणु फौलादभस्मी ताप से भर चुका था । अप्रत्याशित रूप से उसका बदला हुआ रूप देख छाया सहम कर दो-तीन कदम पीछे हो रही ।

"नीरद बाबू !" उसका कंठ आवेश से बुरी तरह काँप रहा था—"आपको मालूम है, आज इस घर में कौन-सा नाटक खेला जा रहा है ?"

"भाभी..."

"हाँ, वह नाटक..." आवेगकम्पन ने उसके आगे के शब्दो को क्षण भर के लिए अपने आप में समेट लेना चाहा—"हाँ नाटक ही तो...एक नंगा-रोमांचकारी नाटक...भारत के भाग्य और भविष्य का सौदा अमेरिका

के हाथों—उफ़ ! तुम क्या अपने भारत के लिए कुछ भी नहीं कर पाओगे नीरद बाबू...''

उसी समय किसी नारी कंठ की दबी हुई-सी, घुटी हुई-सी चित्कार ने दोनों ही को चौंकाया। छाया के रोम कूपों से सिहरन की धार-सी फूट पड़ी—नीरद एक ही उछाल में कमरे के बाहर हो रहा...उसके तन-मन में ज्वालामुखी का विस्फोट हो चुका था। छाया की साँस रुकने-सी लगी, अपने थरथराते हुए पैरों में हिमालय जैसी गुरुता समा गई-सी महसूस हो रही थी उसे।

उछालों ने नीरद को पलक झपकते ही बैठक के उँठगाए हुए दरवाजे के सामने कर दिया। दरवाजा एक झटके के साथ खुल गया—तीनों अमेरिकन शराब के नशे मे मदहोश, उछल-कूदकर रहे थे। युवती बिल्कुल नग्न एक ओर बेहोश पड़ी हुई थी और...और...रामबाबू गुलाब को बाँहुओं में जकड़े पागलों की तरह बके जा रहे थे—''मेरी जान, एक झोंपडी के लिए इतनो परेशान...महल खडा कर दूँगा...अच्छा हुआ जो साला मर गया...बस, मेरा, मेरे मेहमानों का....''

''रामबाबू !'' नीरद की दहाड़ सुनकर सभी निमिष भर के लिए सहम गए। फिर तुरन्त ही रामबाबू सम्हल कर आँखों से अँगारे बरसाते हुए तडप उठे—''हट जा बे....सामने...साला अपने को क्रान्तिकारी लगाता है...टुकडखोर...''

मौका पाते ही गुलाब छूटकर नीरद के पैरों से लिपट गई।

तीनों मदहोश अमेरिकनों के मुँह से भद्दी-भद्दी गालियाँ निकलने लगीं। एक झटके के साथ उसने अपने पैरों से गुलाब को अलग कर दिया और रामबाबू के सामने आकर खड़ा हो गया। अपनी खूनी आँखों से उन्हें भस्म-सा करता हुआ।

''बेइमान !'' उसके हाथों का झापड़ खाते ही रामबाबू सामने की दीवार से जा टकराए—''नमक हराम...मातृ-घातक...''

रामबाबू ने तब तक अपनी जेब से पिस्तौल निकाल ली थी। उसने एक ही झपट में पिस्तौल छीन ली...उसी समय पीछे से एक अमेरिकन ने अपना रिवाल्वर चला दिया। उसका अभ्यस्त शरीर तुरन्त एक ओर हो गया और तभी एक हाय के साथ रामबाबू जमीन पर लोट उठे। गोली उनके कलेजे के पार हो गयी थी...उसकी आँखों के सामने अँधेरा छाने लगा...दूसरे ही क्षण उसके हाथ की पिस्तौल गरज पड़ी। तीनों अमेरिकनों को गिरता हुआ देख, उसके मुँह से अट्टहास फूट पड़ा....

रात का नीरव वातावरण अब भी गोलियों की 'धाँय धाँय-धाँय' से प्रतिध्वनित हो रहा था।

सुबह होते न होते राजधानी में कुहराम मच गया।

सारे देश ने आश्चर्य से सुना। भारतीय अखबार बोल रहे थे—

भूतपूर्व क्रान्तिकारी का देशद्रोही स्वरूप

सुप्रसिद्ध कांग्रेसी नेता एवं धारा-सभा के प्रमुख सदस्य रामबाबू को नीरद कुमार नामक एक क्रांतिकारी ने गोलियों का निशाना बनाया। साथ में अमेरिकी दूतावास के तीन मेहमान बुरी तरह से घायल। चार-चार हत्याएँ कर चुकने के बाद उस नरपशु ने रामबाबू की पत्नी को भी गोली के घाट उतार दिया। दिल्ली में हलचल। हत्यारा तुरन्त गिरफ्तार कर लिया गया।

इसके बाद, भिन्न-भिन्न अखबारों ने अपनी ओर से, इस हत्याकाँड के कारण पर नमक-मिर्च मसाला लगाकर पृथक-पृथक 'डिटेल' देने की कोशिश की थी। काफ़ी विस्तृत रूप में। हत्याकाँड डाकेजनी से लेकर 'औरतबाजी' के लिए हुआ होगा—अफ़वाहों का अजीबोग़रीब दौर था...

हाथों मे पड़ी हथकड़ियों की झनकार के बीच रहते हुए नीरद को पांच माह हो रहे हैं। हरबार की तरह उस पर पुनः मुक़दमा चला, चला और खत्म होकर रह गया। जैसे हरबार होता था वैसे ही पुलिस ने गवाहों के जुगाड में सचमुच मेहनत कर डाली। सबसे बडा आश्चर्य तो उसे यह देखकर हुआ कि उसके खिलाफ़ गवाही मे गुलाब भी पेश की गई और उसने अपना 'रोल' इस खूबी से अदा किया कि सरकारी वक़ीलों की आँखें खिल गई। यह सब देख-सुनकर उसे रंचिक भी दुख नहीं हो पाया और दुनिया के 'दोरंगीपन' पर वह कोर्ट ही मे ठहाका मारकर हँस पड़ा। नाटक खत्म हो गया। रिहर्सल वही पुराना था; इसलिए किसी किस्म की कठिनाई का प्रश्न ही नहीं उठता। फैसले की तारीख टाल दी गई।

रह रह कर उसके समक्ष छाया की मूर्ति नाच उठती—आज तक उसकी समझ मे नहीं आ पाया कि आखिर वह क्यों, कैसे और किस लिए बलिदान हुई !

यह भी नहीं कि वह पहेली के इस हल से सर्वथा अनजान ही हो ! जानता है, समझता है मगर जाने क्यों फिर भी सोचना चाहता है हमेशा।

छाया !

जेल के अपने सेल मे बैठा-बैठा कभी व्यथा से कलेजा फट पड़ने सा हो जाता उसका।

नारी और नारीत्व की गरिमा उसे रात-दिन झकझोरती रहती।

कभी-कभी लगता की भारत की हवा तक साँप बनकर बदन से लिपटने लगी हो। रात को सोते समय चीख मारकर उठ बैठता। कजरी की याद की लहर अब तूफानी गति से अन्तराल को बाहर ले जाने को दृढ़-संकल्प-सी दिन रात मे कुछ घंटे अवश्य ले लेती थी। इस बार उसे विश्वास था फाँसी अवश्य हो जायगी। अंग्रेजी राज्य मे 'अदालतें' अपनी सरकार की ही तरह जालिम हुआ करती थी और इसीलिए तो जाने कितने अँग्रजों को दूसरी दुनिया का रास्ता दिखा देने के बाद भी काला पानी तथा आजीवन कारावास जैसी 'भयानक' और जालिमाना सजा तजवीज करती रहीं उसके लिए। मगर अब तो अपने देश मे अपना राज है—अपना राज ! शासक अपने हैं, अदालतें अपनी हैं और तब फिर फाँसी जैसी मामूली सजा के अतिरिक्त और कुछ हो भी क्या सकेगा !—उसका अपराध भी तो कोई उतना भयानक नहीं...व्यंग मे डूबे चिन्तन का प्रस्तुत क्रम अगर कुछ देर भी और चलता रहता तो निश्चय था वह चीख पड़ता, पीड़ा के आवेग से।

अभी-अभी भीखम आया था। उसका मुकदमा अब दिल्ली मे इलाहाबाद हाईकोर्ट में चला आया था। भीखम कह रहा था, यू० पी० के जेल मन्त्री साहब आज जेल का मुआइना करने आ रहे हैं। सम्भव हो उससे भी मिलें।

क्यों न हो !

अपना लहू कुछ काम तो करता ही है। और तभी तो हथकड़ी-बेड़ी से चौबीस घन्टे वाली ऐसी 'व्यवस्था' हो पाई है उसको। परिवार के बड़े लोगों का छोटों पर थोड़ा-बहुत शासन तो आवश्यक ही रहना चाहिए। और नहीं तो क्या !—बिगड़ जाने का डर बना रहता है न !

बचपन के खिलवाड़ ही में तो उससे देश के एक जिम्मेदार नेता की जान चली जाने वाली गलती हो गई। हाथ पैर खुले रहने से कोई दूसरी

खुराफात भी सूझ सकती है। अँग्रेजों की बात दूसरी थी, वे पराये थे सो हर घड़ी खुराफातों को बढ़ावा ही दिया करते थे ! बदमाश कहीं के !—और तब वह अनायास ही ठठा कर हँस पड़ा।

भीखम दौड़ा हुआ आया।

"नीरद बाबू !"

नीरद ने कुछ कहा नहीं। चुपचाप उसकी ओर घूरता रहा। बेचारा आजकल के उसके आन्दोलन में पड़े हृदय से चिन्तित-सा हो उठा था।

"आपको आजकल हो क्या गया है नीरद बाबू..."

"तुम पगले हो भीखम....एकदम पगले !" और वह घूमकर अपने कम्बल पर आ रहा, भीखम भी कुछ सोचता हुआ-सा उसके जँगले के सामने से हट गया।

मिनिस्टर साहब के आने से जेल का वातावरण ही बदलकर रह गया था। वे आए भी और चले भी गए मगर नीरद अपने कम्बल से उठा नहीं। आँख बन्द किए-किए ही जेलर साहब के साथ उन्हें अपने जँगले के पास से गुजर जाने का आभास पा लिया।

और कैदियों को तो मिनिस्टर साहब ने अपने अमूल्य समय से काट कपटकर कुछ मिनट दिए भी, मगर उस जैसे 'भयानक' करार दिये गए कैदी के सामने उनके पग ठमक भर गए !

जब जेलर साहब ने धीरे से कह दिया कि 'वही क्रान्तिकारी है सरकार' तो जल्दी से उनके पग आगे बढ़ गए। जैसे डर रहे हों कि कहीं—उसको बड़ी जोर से हँस पड़ने की इच्छा होने लगी मगर एक निश्वास के साथ जैसे अपने आप ही से 'अपनों से डर लगना स्वाभाविक भी तो है !' कहकर सामने मैदान से लिपटकर सो रही धूप की ओर देखने लगा।

बहका हुआ विचार-क्रम पुनः नारी और नारीत्व पर चलने लगा—

कजरी नारी थी और यह छाया थी—

दोनों ने पुरुष की कही जाने वाली पुरुषता को कितना थोथा, कितना दुर्बल प्रमाणित कर दिया है। उसकी आँखों में चित्रोंकी बाढ़-सी आ गई...

कजरी!

नारी!

उफ्! कितना गोरख धन्धा!

जब वह नारी थी तो कितनी निरीह, कितनी आकुल, कितनी.... और जब उसके नारीत्व ने पुरुष के पौरुष को चुनौती देने के लिए कमर कस लिया तो....

ओह!

बेकार ही उलझ जाता है वह...

"नीरद बाबू!"

भीखम फिर दरवाजे पर आ गया था। कितना पागल है यह भी। पुरानी जान-पहचान भी कभी क़ायम रही है? उसको तो भूल जाना चाहिए था उसे। मगर है यह पूरा पागल कि घण्टे-घण्टे पर आकर बात-चीत कर जाया करता है।

नाते-रिश्ते!

जान-पहचान!

है क्या?

महज खिलवाड़। जब तक मन हुआ उलझे रहे और मन ऊबा तो उठाकर फेंक दिया, चकनाचूर हो गया।

"भीखम!" वह कम्बल से उठकर जँगले के पास आ रहा—"इन मंत्री जी को भी तो कभी तुम्हारी पहरेदारी में रहने का मौका मिला ..."होगा

प्रश्न के बेढंगेपन से पहले तो भीखम अचकचाया; फिर उसके मुँह से निकल गया—"हाँ नीरद बाबू, कई बार...."

"अच्छा !" नीरद को जैसे बहुत आश्चर्य हुआ हो—"तब तो अवश्य ही उन्होंने तुम्हें पहचान लिया होगा भीखम !"

भीखम सोच में पड़ गया कि क्या कहे, कुछ कहते नहीं बन पा रहा था उससे।

"बोलो न !"

"नीरद बाबू, उन्होंने...वे अब क्यों पहचानने लगे नीरदबाबू..." एक लम्बे उच्छ्वास के साथ उसके मुँह से निकल गया।

"अच्छा !"

"नीरद बाबू !"

"मगर भीखम, तुम ही मुझे फिर क्यों याद किए जा रहे हो ! भूल जाओ न !" वह किंचित मुस्कराया—"इन मन्त्री जी के लिए... नहीं...तुम्हारे लिये जैसे ये मन्त्री जी बदल चुके हैं वैसे ही अब नीरद भी तो...वह पहले वाला नीरद तो रहा नहीं। क्यों !"

भीखम के पैर काँप-से गये, नीरद के तीखे व्यंग से—"आप भी ऐसा कहेंगे नीरद बाबू..." नीरद को लगा जैसे वह अब रो देगा।

करुणा से भर उठा वह, भीखम के आँसुओं की घुटन देख कर।

"भीखम सिंह !" तभी एक 'पक्के' ने आकर उसे झकझोर दिया—"अपना काम करते हो कि गप्पबाजी...चलो साहब ने बुलाया है..." और वह पैर पटकता हुआ चला गया।

"भीखम !...."

लड़खड़ाते क़दमों से आगे बढ़ता हुआ भीखम नीरद की पुकार सुन, क्षण भर रुक कर बडी बेबस नीगाहों से देखता रहा और तब जल्दी से

धोती का छोर आँखों पर रख, जेलर साहब के आफ़िस की ओर बढ़ गया। नीरद ने एक लम्बी साँस ली। साँस की लहर में सारा भारत तिरता हुआ-सा जान पड़ा। उसकी आँखों के समक्ष अँधेरा छा गया, अँधेरे के रेशे-रेशे से स्वार्थ-लिप्सा में जल रहे भारत की कराह फूटी पड़ रही थी...

उठा कर ले गये तुझको
जमीं से आसमाँ वाले...

लोकमान्य आँखों में आँसू और स्वर में हलका-सा आदेश लाकर बोले—"मोहन, तुम्हें भारत में जाना ही होगा, तुम्हारी वहाँ ज़रूरत है..."

बापू निष्प्रभ-से हो उठे—'मेरे किए कुछ न होगा गुरुदेव.... कुछ नहीं...'

वातावरण में गहरी खामोशी का आलम था। कहता-कहता सहसा नीरद रुका तो सभी के चेहरे पर पीड़ा की हलकी-सी परत बिछ गई थी। सभा में एक सुई भी गिरने का शब्द लोकने के लिए 'बूढ़े-से-बूढ़े' कान समर्थ थे। नीरद ने धीरे-धीरे अपना झुका चेहरा ऊपर उठाया—अगल-बगल बैठे समवयस्क साथियों की आँखों लहू का छलका पड रहा था। पास ही आजाद, दोनों हाथों को छाती पर कसे, बड़ी तीव्र दृष्टि से सभा की ओर देख रहे थे। नीरद का मन काफ़ी हलका प्रतीत हो रहा था। अपने विगत जीवन का लेखा-जोखा करने के बाद लग रहा था, जैसे किसी ने कलेजे में धँस गए शीशे के टुकड़े को बड़ी आसानी से निकालकर फेंक दिया हो। जीवन क्षेत्र में लडते लडते वह काफ़ी थक भी तो चुका था

स्वर्ग की हलचल समाप्त हो चुकी थी। सभी के मस्तिष्क पर आशंकाओं के बादल घहरा उठे थे।

"मोहन!"

सबकी निगाहें एकबारगी उठ गईं।

लोकमान्य अपने आसन से उठकर बापू के सामने आ गए और उनका कन्धा झकझोरते हुए बोले—"उफ्, तुम तो नाहक ही आए मोहन! तुम होते तो हमारे भारत की यह दशा शायद न होती—एक-एक कर और सब भी चले ही आ रहे हैं। बेचारा नेहरू दिन पर दिन अकेला पड़ता जा रहा है—हे ईश्वर, क्या होने वाला है..." उनके गंभीर स्वर से भविष्यत् आशंका का अत्यन्त विराट स्वरूप झाँक रहा था।

बापू की खोई-खोई आँखें, एकबार सामने बैठे नीरद पर जमीं और तब लोकमान्य पर आकर थम गईं। सभी ने अनुभव किया, वे कुछ कहना चाह रहे हैं; परन्तु कंठ की रुद्धता से मजबूर हैं।

तिलक वहीं बैठ गए—"तुमने जिस पल्लव को पल्लवित करने में अपने जीवन का होम कर दिया...वह...तुम्हारे न रहने से कितनी गड़-बड़ हो रही है मोहन..."

"गुरुदेव !"

"कोई उपाय नहीं है मोहन ?..."

तभी सुभाष उठ कर बोल उठे—"भाई नेहरू अपने राजनीतिक उलझनों में फँसकर देश की ओर देख भी कैसे सकेंगे बापू !...बेचारे अपने सहयोगियों की स्वार्थ-लिप्सा देखकर भी न देखने की मुद्रा में रहने को बाध्य हो उठे हैं....और उनकी इस विमूढ़ता का लाभ उठाकर... भारत...लहू से सींची गई हमारे देश की मिट्टी..."

"सुभाष !" तिलक ने मुड़कर उनकी ओर देखा—"कुछ समझ में नहीं आता...मेरी समझ से तो मोहन, तुम्हें पुनः अवतरित होना पड़ेगा...बगैर इसके कुछ हो नहीं पाएगा..."

"पर मेरी आत्मा कराह रही है गुरुदेव, भारत ने मेरे सीने पर जो घूँसा लगाया है, लगाता जा रहा है...वह..." कहते हुए बापू रो दिए।

सभा का वातावरण बापू के आँसुओं में डूबने-उतराने लगा।

"बापू !" सुभाष की सारी उग्रता जाने किस ओर खप गई थी, स्वर तारल्य से सिहर रहा था—"अपने पावन-चरण-चिह्नों पर अग्रसर करके भारत को आपने जो मार्ग दिखाया है, वह...हमने अपनी हार स्वीकार कर ली बापू...भारत को पतन के गर्त्त में गिरने से बचाना ही होगा—चाहे जैसे भी हो...स्वार्थ-लिप्सा में जल रहा भारत कराह रहा है—अपने बापू को वापस बुलाने के लिए..."

चारों ओर से समर्थन में आवाजें उठने लगीं।

बापू परेशान-से हो उठे।

तभी लोकमान्य आँखों में आँसू और स्वर में हलका-सा आदेश लाकर बोले—"मोहन, तुम्हें भारत में जाना ही होगा...वहाँ तुम्हारी जरूरत है...." कहते हुए उन्होंने बापू को अपने बाँहुओं में भर लिया—"हमें, अपने भारत को अब और अधिक पीड़ित न करो मोहन..."

बापू निष्प्रभ-से हो उठे—"मेरे किए अब कुछ न होगा गुरुदेव... कुछ नहीं..."

"बापू..."

"मोहन..."

अनेक कंठों की झनझनाहट भारत से उठ रही कराह—"हमारा गाँधी वापस दो..." में डूब कर रह गई।

❀ ❀ ❀ ❀

"ओह!"

स्वप्न एक झटके के साथ टूट गया। नीरद को लगा कि जैसे उसके मस्तक की नसों मे खून की जगह तीव्र-तेजाब दौड़ने लगा हो। अचेतन के चित्र, चेतन में आकर छटपटा उठे....बाहर का अन्धेरा छँटने लगा था।

जंगले के सामने से एक 'पक्का' मस्ती मे गुनगुनाता हुआ निकल गया—"उठा कर ले गये तुझको जमीं से आसमाँ वाले..."

नीरद की आत्मा बेहोशी की जंजीर में कसने लगी, कसती रही...

कितनी दाहक थी वह कसन—उफ्!

उसने अपना मस्तक पत्थर के फर्श पर दे मारा। हाथों में पड़ी जंजीर बड़ी जोर से झनझना उठी। चेतना खोती गई, खोती गई। जंजीर की झनझनाहट में मस्तिष्क की कराह तिर रही थी...वह जंजीर...

—बस—

चंद मिनट...

स्व० भैया 'कान्त' की कृति 'जंजीर' प्रस्तुत करते हुए प्रसन्नता तो हो रही है; परन्तु प्रसन्नता से कम दुख भी नहीं। 'जंजीर' उनकी दीर्घ प्रतीक्षित कृति थी और उनके लाख-लाख पाठकों के मन में उसके प्रति कितनी उत्कंठा व्याप्त थी—इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि उनके जीवन-काल में ही सैकड़ों पाठकों ने अग्रिम रुपए जमा कर दिये थे। वर्षों बीत गए। मेरा साहस नहीं हो रहा था कि 'जंजीर' के प्रकाशन का विचार तक ला सकूँ। भैया की कला इधर युगान्तरकारी मोड़ लेती जा रही थी। अन्त समय की उनकी रचनाएं—पपिहरा, पारस, लालरेखा आदि दुनिया भले ही न माने पर वे हिन्दी-कथा-साहित्य में युगान्तर का संकेत तो कर ही रही थीं।

'जंजीर' का सारा फार्मूला बन चुका था, लिखना भी आरम्भ कर चुके थे; परन्तु तभी सहसा ही दुर्दैव के कठिन चक्र में निर्मम-तापूर्वक पीस दिये गये। 'जंजीर' की भाषा, शैली एवं कथानक में उनकी औपन्यासिक-कला की चरम परिणति होती, ऐसा उनका अपना विचार था। अपने बलिदान के कुछ दिनों पूर्व वे बार-बार कहा करते थे, बहुत कुछ संभव हो, 'जंजीर' मेरे 'कथाकार' की वह कृति हो; जैसा न अबतक लिख सके हैं और न भविष्य में लिख सकेंगे। पृष्ठ संख्या भी छ-सात सौ से कम न जाती।

पाठकों के बराबर हो रहे अनुरोधों ने जब बुरी तरह से कोंचना आरंभ कर दिया तो जल्दी ही किसी निर्णय पर पहुँचने को बाध्य होना पड़ा। 'जंजीर' के लिए आये अग्रिम पैसों को लौटा देने का विचार किया, पर 'जंजीर' के लिए पागल पाठकों ने इसे स्वीकार नहीं किया। 'जंजीर' के प्रकाशन में मेरी आत्मा इसलिए काँप रही थी कि पाँडुलिपि जो भी लिखी जा चुकी थी, वह काफी अस्त-व्यस्त हो रही थी; दुर्भाग्यवश दीमकों ने भी उसकी अच्छी तरह 'मरम्मत' कर दी। पाठकों के निरन्तर हो रहे अनुरोध बराबर कोंच रहे थे। साहस किया। कार्य काफ़ी असाध्य था और अपने पास 'प्रतिभा' के नाम पर, कुछ नहीं। अल्प-बुद्धि हतोत्साह हो गई; मगर लगा ही रहा। परिणाम आपके समक्ष प्रस्तुत है। जानता हूँ, 'कान्त' और 'जंजीर' के बीच पड़ी पार्थक्य की खाई आपको तिलमिला भी सकती है। फिर भी मेरी अल्पबुद्धि की दीनता और भैया के प्रति आपकी ममता किसी गलत धारणा में नहीं पड़ने देगी, विश्वास है। 'जंजीर' को भैया 'कान्त' की अन्तिम कृति मानने के पहले, उसके प्रकाशन की परिस्थियों को कभी न भुलाया जाय—यह भी ध्यानेय है।

एक बात और—

'जंजीर' को प्रस्तुत रूप में पूर्ण करने के प्रयत्न में मुझे भैया 'कान्त' के प्रिय शिष्य और मेरे छोटे भाई ज्वालाप्रसाद 'केशर' ने बहुत सहायता दी है। 'केशर' अपना है, इसलिए धन्यवाद का प्रश्न ही कहाँ ?

—जयन्त कुशवाहा

१८–४–५४

कान्त-साहित्य

४)	निर्मोही	३)	कुंकुम
२॥)	इशारा	४॥)	मद्भरे नयना
४)	नागिन	५॥)	विद्रोही सुभाष
४॥)	चूड़ियाँ	४)	पद्मिद्रा
२॥)	जलन	३॥)	लालरेखा
३॥)	मँझधारा	५)	परदेसी २ भाग
४)	लवंग	२॥)	उड़ते उड़ते
४)	मंजिल,	१॥)	रक्त मंदिर
३॥)	आहुति	३)	जंजीर
५॥)	नीलम	२॥)	बसेरा
२॥)	पागल	२॥।)	अकेला
२॥)	जवानी के दिन	४)	दानवदेश २ भाग
२॥)	उसके साजन	४)	गोल निशान
॥।)	कैसे कहूँ	३॥)	हमारी गलियाँ
३॥)	पारस	४)	लालकिले की ओर

२॥) पराजिता (कहानी-संग्रह)

प्राप्ति-स्थान

चिनगारी-प्रकाशन

पो० बॉ० ७८, वाराणसी—१

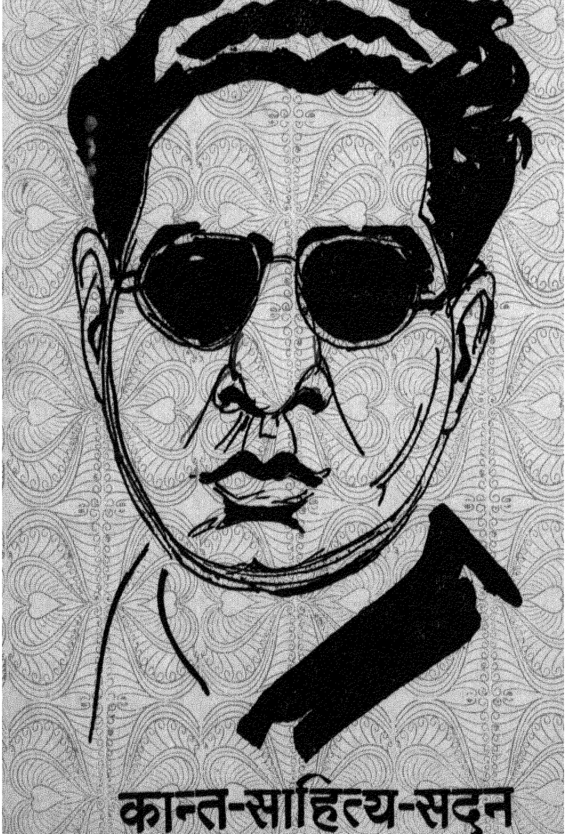

कान्त-साहित्य-सदन

भडुवरिया, मिर्जापुर